

जैनधर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार सर्वज्ञ की वाणी है। सर्वज्ञ धर्मात् प्रात्मद्रष्टा। सत् प्रात्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्व निरूपण कर सकते हैं। परमहितकर नि श्रेयस का यथार्थ उपदेश कर सकते हैं।

सर्वज्ञो द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, प्रात्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध 'आगम' मूल के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरों की वाणी मुक्त मुग्धों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उसे प्रेषित करके व्यवस्थित 'आगम' का रूप दे देते हैं।

आज जिसे हम 'आगम' नाम से अभिहित करते हैं, प्राचीन समय में वे 'गणपिटक' वा 'गणपिटक' में समग्र द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। पश्चाद्बर्ती काल में इसके अंग, उपांग, अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, तब आगमों को स्मृति के आधार पर या गुरु परम्परा से सुरक्षित रखा जाता था। भगवान् महावीर के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक 'आगम' स्मृतिपरम्परा पर ही चले स्मृति-दुर्बलता, गुरु-परम्परा का विच्छेद तथा अन्य अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगम-ज्ञान क्षुप्त हो मशहूरोंतर का अल मूखता-मूखता गोस्पद मात्र ही रह गया। तब देवद्विगण क्षमाग्रमण ने अमणों का बुलाकर स्मृतिदोष से क्षुप्त होते आगम ज्ञान को—जिनवाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपि का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनवाणी को पुस्तकाखण्ड करके आने वाली पीढ़ी पर अवर्णनीय उपनाम यह जैन धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की धारा को प्रवहमान रखने का अद्भुत उपक्रम था। आगमों का सम्पादन वीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकाखण्ड होने के बाद जैन आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित ही गया, किन्तु कालदीर्घता, प्राकृत-प्रान्तरिक मतभेद, विशह, स्मृति-दुर्बलता एवं प्रमाद आदि कारणों से आगमज्ञान की शुद्ध धर्म बोध की सम्यक् गुरुपरम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नहीं रची। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण मन्दमं, गुरु अर्थ छिन्न-विच्छिन्न होने चले गए। जो आगम लिखे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते थे। उनका अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणों से आगमज्ञान की धारा मनुजित होती गयी।

विश्व की होलहवीं शताब्दी में लोंगसाह ने एक आतिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध धर्म-अर्थ-ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद पुनः अन्वेषण था गए। सांश्र्दार्थिक द्वेष, सैद्धान्तिक विशह तथा लिपिकारों की आपाविषयक अज्ञानता आ उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गए।

अग्नीनवी शताब्दी के प्रथम अरण्य में जब आगम मुद्रण की परम्परा चली तो पाठकों को कुछ हुई। आगमों की प्राचीन टीकाएँ, पूर्ण व निरुक्ति जब प्रकाशित हुईं तथा उनके आधार पर आगमों का

पयः—

समवायाग में दश आगम के दश अक्षयन और सात वर्ग बने हैं ।^१ नदीमूत्र में घाठ बर्गों का उल्लेख मनु दश अक्षयनों का उल्लेख नहीं है ।^२ आचार्य अमरदेव ने समवायाग वृत्ति में दोनो आगमों के कपन मंत्रस्य विधाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग में दश अक्षयन हैं । इस दृष्टि से समवायाग में दश अक्षयन और अन्य वर्गों की दृष्टि से सात वर्ग बने हैं । नदीमूत्र में अक्षयनों का उल्लेख नहीं है, केवल घाठ वर्ग बनता है ।^३ परन्तु इस सामंजस्य का अन्त तक निर्वाह किस प्रकार हो सकता है ? समवायाग में अन्तर्दृशा के शिक्षाशाल (उद्देशनशाल) दश बने गये हैं जबकि नदीमूत्र में उनकी संख्या बताई गई है । समवायाग की वृत्ति में आचार्य अमरदेव ने लिखा है कि उद्देशनशालों के अन्तर का अभिप्राय सात नहीं है ।^४

आचार्य जिनदासगरी महत्तर ने नदीधूलि में^५ और आचार्य हरिभद्र ने नदिवृत्ति में^६ लिखा है कि वर्गों के दश अक्षयन होने से प्रस्तुत आगम का नाम अतगण्डसाधो है । धूलि में दशा का अर्थ अक्षयना गया है ।^७ समवायाग में दश अक्षयनों का निर्देश है किन्तु उनके नाम का निर्देश नहीं है । जैसे नमि, मातग, न, रामगुप्त, गुदर्शन, जमाति, भगाली, विजय, चित्तवक्र और फाल अवष्टपुत्र ।^८

तरवार्यमूत्र के राजवार्तिक में एव अग्रपञ्चमो मे बुध पाठभेद के साथ दश नाम प्राप्त होते हैं । जैसे मातग, गोमिल, रामगुप्त, गुदर्शन, यमलोक, बलीक, कबल, पाल और अवष्टपुत्र ।^९ उनमें लिखा है कि आगम में प्रत्येक तीर्थंकरों के समय में होने वाले दश-दश अन्तर्दृश केवलियों का वर्णन है ।^{१०}

जयधरना में भी इस बात का समर्थन किया है ।^{११} नदीमूत्र में न तो दश अक्षयनों का उल्लेख है और उनके नामों का ही निर्देश है । समवायाग और तरवार्यवार्तिक में जिन नामों का निर्देश हुआ है वह वर्तमान

दश अक्षयना सप्त वर्गा । —समवायाग प्रतीर्णक, समवाद मूत्र १६

घट्ट वर्गा—नदीमूत्र ८८.

दश अक्षयना त्ति प्रथमवर्गाण्यक्षेयैव घटन्ते, नद्यां तथैव व्याख्यातत्वात् मन्वेह पठन्ते 'सप्त वर्गा' त्ति तत् प्रथमवर्गाद्व्यवर्गनिक्षया यतोऽप्यष्ट वर्गा, नद्यामपि तथा पठित्वात् —समवायागवृत्ति पत्र ११२.

ततो भणित-घट्ट उद्देशणकाला इत्यादि, इह च दश उद्देशनकाला अधीयन्ते इति नास्याभिप्राय-मवपचक्ष्मा । —समवायागवृत्ति, पत्र ११२

पद्मवर्गे दश अक्षयना त्ति तत्समवर्गो अतगण्डदश त्ति—नदिमूत्र धूलिसहित पृ. ६८

प्रथमवर्गं दशाक्षयनात्ति इति तत्समवर्गो अन्तर्दृशा इति—नदिमूत्रवृत्तिसहित, पृ. ८३

दशति-घट्टा—नदीमूत्र, धूलिसहित पृ. ६८.

ठाण, १०/११३.

तरवार्यवार्तिक १/२०, पृ ७३ ।

(क) इत्येते दश वर्धमानतीर्थंकरतीर्थं, एवमूपभादीनां त्रयोविधनेस्तीर्थंकरव्येष्टये च दश दशानगारा दश दश दादणानुपसर्गान्निजस्य कृन्तनमंशयादन्तकृत दश अस्या वर्धयंते इति अन्तर्दृशा । —तरवार्यवार्तिक १/२०, पृ. ७३.

(घ) अग्रपञ्चमो, ५१.

अंतवष्टरता नाम अग्र चउत्तिहोयगामे दाग्णे महिऊण पाडिहेर मडूण निश्वाण मरे मुरमणादि दश-दश गाह निश्च पडिहण्णेदि । —व्यापापपट्ट, भा. १, पृ. १३०.

भगवान् धरिष्टनेमि के शासन में यक्षिणी नाम की साध्वी प्रवर्तिनी हुई और भगवान् महावीर के शासन में भार्या चन्दनवाला प्रवर्तिनी साध्वी थी ।

शिक्षाएं :—

इस गृह के अध्ययन से मुमुक्षुजनों को ऐसी अनेक समूल्य शिक्षाओं का लाभ हो सकता है जिनके द्वारा उनका जीवन आदर्श रूप हो जाता है । जैसे—

१. धैर्य और बढ़ विश्वास गजमुकुमार की तरह होना चाहिए ।
२. सहनशक्ति अर्जुन-माली के समान होनी चाहिए ।
३. श्रावक लोगों को सुदर्शन अमणोपासक का अनुकरण करना चाहिए जिसका आत्मतेज देव भी सहन नहीं कर सका ।
४. धर्मविश्वास कृष्ण वामुदेव की भांति होना चाहिए ।
५. प्रश्नोत्तर की शैली अनिमित्त कुमार के समान होनी चाहिए ।
६. त्यागवृत्ति कृष्ण वामुदेव की आठ धर्महिणियों की भांति होनी चाहिए ।
७. तरश्चर्या महाराजा श्रेणिक की दस देवियों की भांति होनी चाहिए जो आठवें वर्ग में सविस्तार बरिणत है । इस प्रकार यह शास्त्र अनेक शिक्षाओं से झलकृत हो रहा है । जो भव्य प्राणी उक्त शिक्षाओं को धारण कर लेता है उसका मनुष्य-जीवन सार्थक और जनता में आदर्श रूप बन जाता है ।

उपकार :—

यद्यपि इस शास्त्र के समुचित सम्पादन में मैं अममर्थ्य थी तथापि पूज्य गुरुदेव अनुयोगप्रवर्तक श्री बन्हैया-लालजी (कमलमुनिजी) म. सा. की पावन कृपा से, शास्त्र विशारद माणिक कुवरजी म. सा. के शुभाशीप से, प. श्रीभास्करजी भारिल्ल की आग्रहपूर्वक प्रेरणा से, परम पूज्य आगम-प्रभाकर आत्मारामजी म. सा. की श्रुतसहायता से और भगिनी साध्वी वा. ब. मुक्तिप्रभाजी म. सा., वा अ दर्शनप्रभाजी म. सा. और वा. ब. अनुपभाजी के परम सहयोग से श्रमणसभ के सुदाचार्य विद्वत्सल मुनि श्री भद्रकरजी म मा द्वारा आयोजित इस पवित्र अनुष्ठान में विचित योगदान करने में समय हो गई ।

अतः इन सर्व महाविभूतियों और महानुभावों की महती कृपा, भावना प्रेरणा से पावन बनी हुई मैं भेरे और प्रिय पाठकों के संसार का अंत करनेवाली पावनी दशा की अम्ययंता के साथ विराम लेती हूँ और प्रसादवश बुद्धिदोष या अज्ञानवश हुई त्रुटियों हेतु श्रुतदेवताओं की और सर्व श्रुतधरो की क्षमा चाहती हूँ ।

महेंद्रत्मला

साध्वी दिव्यप्रभा

१९८०

जैन उपाध्य

जमनादास मेहता मार्ग, सीतवती

वालकेरवर-६

प्रस्तावना

अन्तर्कृद्दशा : एक अध्ययन

भारत के मुनहूरे इतिहास के पृष्ठों का जब हम गहराई से अनुशीलन-परिशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट परिजात होता है कि प्रागैतिहासिक-काल से ही भारतीय तत्त्वचिन्तन दो धाराओं में प्रवाहित है, जिसे हम ब्राह्मण सस्कृति और श्रमण सस्कृति के नाम से जानते-पहचानते हैं। दोनों ही सस्कृतियों का उद्गमस्थल भारत ही रहा है। यहाँ की पावन-पुण्य धरा पर दोनों ही सस्कृतियाँ फलती और फूलती रहीं हैं। दोनों ही सस्कृतियाँ साथ में रही इसलिए एक सस्कृति की विचारधारा का दूसरी संस्कृति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, सहज है। दोनों ही सस्कृतियों की मौलिक विचारधाराओं में अनेक समानताएँ होने पर भी दोनों में भिन्नताएँ भी हैं। ब्राह्मण सस्कृति के मूलभूत चिन्तन का स्रोत 'वेद' है। जैन परम्परा के चिन्तन का स्रोत "भागम" है। वेद 'श्रुति' के नाम से विद्युत है तो भागम "श्रुत" के नाम से। श्रुति और श्रुत शब्द में अर्थ की दृष्टि से अत्यधिक साम्य है। दोनों का सम्बन्ध "श्रवण" से है। जो सुनने में आया वह श्रुत है।^१ और वहीं भावभाषक श्रवण श्रुति है। केवल शब्द श्रवण करता ही श्रुति और श्रुत का समीप अर्थ नहीं है। उसका तात्पर्यार्थ है— जो वास्तविक हो, प्रमाणभूत हो, जन-जन के मगस की उदात्त विचारधारा की निष्पत्ति हो, जो प्राप्त पुरखों व सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बीतराज महापुरखों के द्वारा कथित हो वह भागम है, श्रुत है, श्रुति है। साधारण-व्यक्ति जो राग-द्वेष से सप्रस्त है, उसने वचन श्रुत और श्रुति की कोटि में नहीं आते हैं। भाचार्य वाचिदेव ने भागम की परिभाषा करते हुए लिखा है— प्राप्त वचनों से भाविभूत होने वाला अर्थ-संवेदन ही "भागम" है।^२

१. क. श्रुते स्मेति श्रुतम् । —तत्त्वायंराजवातिक ।

ख. श्रुतेः प्राप्तना तदिनि श्रुत शब्दः । —विशेषावश्यकभाष्य मतधारीयावृत्ति ।

२. प्राप्तवचनादाविभूतमर्थसंवेदनभागम —प्रमाणतत्त्वालोक ४।१—२ ।

परवान् कुछ प्रपुत्रादो को छोड़कर श्रुत साहित्य में परिवर्तन नहीं हुआ। वर्तमान में जो प्रायममाहित्य उपलब्ध है, उसके संरक्षण का श्रेय देवद्विगण क्षमाश्रमण को है। यह माघिकार कहा जा सकता है कि वर्तमान उपलब्ध प्रायम-साहित्य की मौलिकता प्रसिद्ध है। कुछ स्थलों पर मले ही पाठ प्रक्षिप्त व परिवर्तित हुए किन्तु उससे भागमो की प्रामाणिकता में कोई अन्तर नहीं आता।

अन्तकृद्गा यह घाठवा अंग सूत्र है। प्रस्तुत अंग में जन्म मरण की परम्परा का अन्त करने विशिष्ट पवित्र-चरित्रारामाधो का वर्णन है और उसके दश अध्ययन होने से इस का नाम अन्तकृद्गा है। समस्त सूत्र में प्रस्तुत प्रायम के दश अध्ययन और सात वर्ग बताये हैं।^{१८} आचार्य देववाषक ने नन्दीसूत्र में घाठ का उल्लेख किया है पर दश अध्ययनों का नहीं।^{१९} आचार्य अश्वमेध ने समवायांग वृत्ति में दोनों ही उपलब्ध प्रायमों के बचन में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं, इस स्थिति समवायांग सूत्र में दश अध्ययन और अन्य वर्गों की अपेक्षा में सात वर्ग बड़े हैं। नन्दीसूत्रकार ने अध्ययनों को उल्लेख न कर केवल घाठ वर्ग बताये हैं।^{२०} पर प्रश्न यह है कि प्रस्तुत सामंजस्य का निर्वाह अन्त तक प्रकार हो सकता है? क्योंकि समवायांग में ही अन्तकृद्गा के शिरोधार्य (उद्देशनकार) दश बड़े हैं जबकि नन्दीसूत्र में उनकी संख्या घाठ बताई है। आचार्य अश्वमेध ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि हमें उद्देशनकार अन्तर का अभिप्राय ज्ञात नहीं है।^{२१}

आचार्य विनयासगणी महत्तर ने नन्दीसूत्र में^{२२} और आचार्य हरिभद्र ने नन्दीवृत्ति^{२३} में लिखा है कि प्रथम वर्ग के दश अध्ययन होने से इस प्रायम का नाम 'अन्तगृहदशमो' है। श्रुतिकार ने दश का अन्त किया है।^{२४} वह स्मरण रखना होगा कि समवायांग में दश अध्ययनों का निर्देश तो है पर उन अध्ययनों के नामों का संकेत नहीं है। स्थानाङ्ग में दश अध्ययनों के नाम इस प्रकार बताये हैं—नमि, मानग, मोमि, रामगुप्त, मुदगंन, जमानि, भगाली, विजय, चिन्वकर, और पाल अक्षयपुत्र।^{२५}

आचार्य अश्वमेध ने राजवातिक^{२६} में और आचार्य भुषवद्र ने अगण्णति^{२७} अन्य में कुछ प्रायमों के साथ दश नाम दिये हैं। ये इस प्रकार हैं—नमि, मानग, मोमि, रामगुप्त, मुदगंन, यमरोक, वनीर, वनीर, वनीर, पाल और अक्षयपुत्र। इसमें यह भी लिखा है कि प्रस्तुत प्रायम में हर एक शीर्षकों के समय में होने वाले दश अन्तकृद् के बचनियों का वर्णन है। इन बचन का समर्थन जयघवताकार बीरगेन और जयसेन ने भी किया है।

८. समवायांग प्रतीक संस्करण १६.
९. नन्दी सूत्र ८८.
१०. समवायांगवृत्ति पत्र ११२.
११. समवायांगवृत्ति पत्र ११२.
१२. नन्दीसूत्र श्रुतिमहित पत्र ६८.
१३. नन्दी सूत्र वृत्ति सहित पत्र ८३.
१४. नन्दी सूत्र श्रुतिमहित पृ. ६८.
१५. स्थानाङ्ग १०। ११३.
१६. तत्त्वार्थराजवातिक १। २० पृ. ७३.
१७. अश्वमेधनी ५१.
१८. ब्रह्मसंहिता, भाग १, पृ. १३०.

डाक्टर राधाकृष्णन् ने स्पष्ट धारणा में लिखा है कि यदुबैद में ऋषभदेव, अविनाथ और अरिष्टनेमि, इन तीन तीर्थकारों का उन्मेष पाया जाता है।^{४०}

रघुपुत्राण के प्रभाव यष्ट में एक वर्णन है—घरने जन्म के विद्वाने भाग में कामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव में त्रिभू ने कामन को दर्शन दिये। वे त्रिभू, श्वामरर्षण, अचेल तथा पद्मान से स्थित थे। कामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा। यह नेमिनाथ हम घोर कविनाथ में सब पापों का नाश करने वाले हैं। उनके दर्शन घोर स्पर्श से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है।^{४१} प्रभावपुत्राण^{४२} में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है। महाभारत^{४३} के धनुशासन पर्व में 'शूरः शौरिज्जेश्वर' पद आया है। विज्ञाने 'शूरः शौरिज्जेश्वर.' मानकर उनका अर्थ अरिष्टनेमि किया है।^{४४}

लक्ष्मणार के तृतीय परिवर्तन में तथामत बुद्ध के नामों की सूची दी गई है। उनमें एक नाम "अरिष्टनेमि" है।^{४५} गणभक्त अहिमा के दिग्ध आलोच को जगमयाने के कारण अरिष्टनेमि अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे जिसके कारण उनका नाम बुद्ध की नाम-सूची में भी आया है। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. राय चौधरी ने घरने बंशुव परम्परा के प्राचीन इतिहास में श्रीकृष्ण की अरिष्टनेमि का चर्चारा भाई लिखा है। बर्तल टॉड ने^{४६} अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में लिखा है कि मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में चार बुद्ध मेधावी महापुरुष हुए हैं, उनमें एक आदिनाथ हैं, दूसरे नेमिनाथ हैं, नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियों के प्रथम षोडश तथा चीनिया के प्रथम "फो" देवता था। प्रसिद्ध कोपकार डॉ. जेम्सनाथ वसु, पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर फुह्रर, प्रोफेसर बार्लेट, मिस्टर कर्त्ता, डाक्टर हरिदत्त, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालार, प्रभृति अनेक-अनेक विद्वानों का स्पष्ट मतम्ब है कि भगवान् अरिष्टनेमि एक प्रभावशाली पुरुष थे। उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में कोई बाधा नहीं है।

छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम "घोर आगिरस ऋषि" आया है, जिन्होंने श्रीकृष्ण की धारमयज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। धर्मानन्द कौशास्त्री का मानना है कि आगिरस भगवान् अरिष्टनेमि का ही नाम था।^{४७} आगिरस ऋषि ने श्रीकृष्ण से कहा—श्रीकृष्ण जब मानव का प्रकृत समय सन्निकट आये, उस समय आपको तीन बातों का स्मरण करना चाहिये—

१. स्व ध्यानमगि—तू अविनाथवर है।
२. स्व अच्युतमगि—तू एक रम में रहने वाला है।
३. स्व प्राणमशितमगि—तू प्राणियों का जीवनदाता है।^{४८}

४०. Indian Philosophy, Vol. I. P. 287.

४१. रघुपुत्राण प्रभाग यष्ट.

४२. प्रभाव पुत्राण ४९।५०।

४३. महाभारत धनुशासन पर्व अ. १४९, श्लो ५०, ८२

४४. श्रीमद्भाग्य प्रभाग, पण्डित टोडरमल।

४५. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य मरेन्द्रदेव, पृ. १६२.

४६. अत्रय आक दी भगवत्पर रिमर्ष इन्स्टीट्यूट पत्रिका, जिल्द २३, पृ. १२२।

४७. भार्गवीय संस्कृत घोर अहिमा—पृ. ५७।

४८. तर्कतद् घोर आगिरसः, कृष्णाय देवकीपुत्रायो वत्सोवाचाऽपिपासा एव स बभूव, सोऽन्त धेवायामेतत्पय प्रतिपद्येताऽतमस्यच्युतमगि प्राणसतीति।
—छान्दोग्योपनिषद् प्र. ३, पृष्ठ १८.

पत्नी थी। मुद्गरपाणि पक्ष की बहू उपामना करता था। राजगृह नगर की सजिना गोष्ठी के छह सदस्यों के द्वारा बन्धुमती के चरित्र को छुट्ट करने से झुंन मानी के मन में अत्यन्त रोष पैदा हुआ और मुद्गरपाणि पक्ष महयोग से उसने उनका पक्ष कर दिया। बहू हिंस्र का नगनाशब्द करने लगा। प्रतिदिन सात व्यक्तियों को मारता भगवान् महावीर के आगमन की श्रमण कर मुद्गमन श्रेष्ठी दर्शनार्थ जाता है। झुंन की यक्ष-पाश से मुक्त करता है और भगवान् के शरणा में पहुँचाता है।

राजगृह के बाहर यक्षाविष्ट झुंन माली का आशय था। क्या मजाल कि कोई नगर से बाहर निकलने की हिम्मत करे! मगर भ० महावीर का परदारण होने पर मुद्गमन, माता-पिता के मना करने पर भी रुका नहीं। वह भगवान् के दर्शनार्थ रवाना होता है। मार्ग में झुंन का साक्षात्कार होता है। हिंसा पर अहिंसा विजय होती है।

इस वर्णन में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि नामधारी अनेक भवन हो सकते हैं किन्तु सच्चे भवन बहुत ही दुर्लभ हैं। जिस समय आकाश में उमङ्ग-पुमङ्ग कर घटाएँ, उन घटाओं को देख कर कोई मोर बहे तु बहूक मय, केदारव मन कर! मोर बहेगा, यह कभी सम्भव नहीं है। जो सच्चा भक्त है, वह समय आने पर प्राणों की बाँझी भी लगा देता है किन्तु पीड़े नहीं हटता। वह जानता है, बिना अग्नि-स्नान किये सुवर्ण निष्कार नहीं आता। बिना पिते हारे में अमक नहीं आती। जैसे ही बिना अष्ट पाये भक्ति के रम में भी अमक समक नहीं आती।

झुंन माली श्रमण बनकर उग्र साधना करते हैं। जिस के नाम से एक दिन बड़े-बड़े वीरों के पतन घटने से, हृदय धड़कने से, जिसने पाँच माह तेरह दिन में ११५१ मानवों की हत्या की थी, वही व्यक्ति अन्तिम निर्वन्ध साधना की स्वीकार करता है, तो उसका जीवन आमूल-मूल परिवर्तित हो जाता है। लोग उन श्रमण को बटुवचन बहूकर निरस्कार करते हैं। साठी, परपर, ईंट और धल्लों से उन्हें प्रभावित करते हैं तथापि उन के मन में आश्रय पैदा नहीं होता। वह यही चिन्तन करते हैं—

समण सत्रयं दत्त हुणेज्ज कोइ बरधई ।
 नरिय जीवरम नामुत्ति एव पेहेज्ज सजए ।५०

श्रमण सत्य और दान्त होता है, वह इन्द्रियों का दमन करता है। यदि कोई उसे मारता और पीटता तो भी वह विचलन करता है कि वह आराम कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है, यह अजर अमर है, शरीर लक्षणमय है। उसका नाश होता है, तो उसमें भ्रम क्या जाता है! इस प्रकार समत्वपूर्वक चिन्तन करते हुए वे अथक उपसर्गों की भी शान्त भाव से सहन करते हैं। झुंन अपनी सागामयी उग्र साधना के द्वारा छह माह में ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

छठे वर्ण में उग्र बालमुनि का भी वर्णन है जिसने छह वर्ष की लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण की थी। ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर के शासन में सब से लघुवय में प्रव्रज्या ग्रहण करने वाला वही एक मुनि है। अन्य ज

५०. उत्तराध्यायन सूत्र २। २७
 ५१. 'कुमारमणे' ति पद्मवर्णजातस्य सस्य प्रव्रजितत्वात्, आह ष 'अश्वरितो पश्वद्यो निर्वन्ध होइऊण पावपण नि, एतदेव चाश्चर्यमिह अन्वया वपात्तवाशारात् प्रव्रज्या इत्यारिति।

घटे हो जाते हैं। मुग़ल मुक्तिधामों में पतने वाली मुहुमुमार रात्रिया इत्रा उष तपश्चरण करने आत्मा को बुद्धि की तरह चमका मचती हैं, यह इन दो वर्गों के अन्तर्धान में स्पष्ट होना है। इन महारात्रियों के छुट-मुट जीव-प्रगम धामों व धामों के व्याख्या-साहित्य में यत्र-नत्र विचरे पडे हैं। विस्तारभय मे हम उन सभी प्रसंगों वहाँ नहीं दे रहे हैं। इन महारात्रियों ने विभिन्न प्रकार की बठोर तपश्चर्या की जिम्मा उन्नेय इन वर्गों किया गया है। प्रश्न से—गमो मनेयता-महित धामु पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त करती हैं।

इस प्रकार धन्यदृश्यां मूल में धनेव प्रकार के माधवों घोर माधिकाधो की सधना का सजीव रूप है। एक घोर मत्रमुहुमार जैसे तरणगदस्वी हैं, तो दूसरी घोर धनिमुक्त कुमार जैसे अस्पवयस्क तेजस्वी अमर नमय हैं। तीसरी घोर बागुदेव थीरूप व मगाट् अँटिक की महारात्रियों की जीवन-गाथाएँ तप की उज्ज्वल चिरमें विकीर्ण कर रही हैं। यही कारण है कि पर्युपण के पावन पुष्प पत्तों में स्थानवचामी परम्परा के वा इस धाम का वाचन करते हैं। अगों में यह छाठवों अग है, छाठ वर्गों में विभक्त है। घोर पर्युपण पर्वे छाठ दिन होते हैं। छाठवर्गों को धारणित्व रूप में नष्ट करने वाले ९० माधवों का पवित्र चरित्र है। अष्टमुगोदेव मित्रि को प्रदान करने में समर्थ है।

इस धाम की, पर्युपण के मुहुरे धदर पर बज से वाचने की परम्परा प्रारम्भ हुई, यह धम्पेर्ण है। सम्भव है घोर मीमाणाह या उनके पश्चात् प्रारम्भ हुई हो। जिस विमी ने भी यह परम्परा प्रारम्भ का साह्य किया होगा, वह बहुत ही तेजस्वी व्यक्ति रहा होगा।

धन्यदृश्यां मूल पर मन्त्र में दो वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं। एक धाचार्य अमयदेव की घोर एक धाच धानीवान जी महारात्र की। तीन-चार गुजरानी धनुवाद प्रकाशित हुए हैं घोर पाव हिन्दी धनुवाद प्रकट हुए हैं इन तरह इस धाम के बाह्य सस्करण प्रकाश में धाये हैं १७ अँजो धनुवाद भी मुद्रित हुआ है।

प्रस्तुत मन्त्रण पूर्व संस्करणों की धनेशा धनी बुद्ध धलय विशेषताएँ लिये हुए हैं। मुद्ध मूल पाठ धर्म है, घोर यत्र-नत्र विवेचन है, जो बचा मे धाये हुए सम्भीर भावों को व्यक्त करता है। परिनिष्ट मे धाम के रहस्य को व्यक्त करने के लिये टिप्पणु धादि धायत्त उपयोगी नामधो भी दी गई है।

इस धाम के मन्त्रादन का अर्थ है—वहिन साख्यो दिव्यप्रभा जी जो जो परमविदुषी साख्यीर उज्ज्वलकुमारी जी की मुनिप्या हैं। विदुषी महामती श्री उज्ज्वल कुमारी जी एक प्रहृष्टप्रतिभासम्पन्न साख्यी। उनके नाम मे सम्पूर्ण जैन मन्त्राध मनी-भार्ति परिचित हैं। महासती जी की प्रबल प्रतिभा के सदर्शन उन मुनिप्याधो में सहज रूप मे लिये जा सकते हैं। प्रस्तुत धाम मे महासती श्रीदिव्यप्रभा जी की प्रतिभा की दि धिरमें विकीर्ण हूयी हैं। उनका यह प्रयोग प्रसन्नोप है। धाशा है वे सैधन के क्षेत्र मे धामे बदर सरस्वती मन्त्र मे अँष्टम वृत्तियाँ मन्त्रित करेंगी।

जैन धाम प्राचीन साहित्य की धनमोल सम्पदा है, जिस पर जैन धामन का भव्य प्रामाद धनमि है। उनके प्रकाशन मन्त्रादन के सम्बन्ध मे विभिन्न स्थानों से प्रयत्न हुए हैं। पर ऐसे सस्करणों की धने विरबाण मे थी जो धाम के मूल हावों को स्पष्ट कर सकें। धाम के ध्याख्या-साहित्य के प्रातिक मे धाम की मुद्ध धन्वियों को धीव मनें। इगो दृष्टि से धमणुमय के युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी ने इस महान् व की मन्त्र करने का एक बड़ मन्त्र किया, जिस को सभी ने मुक्तपठ से प्रशंसा की। मेरे परम अर्थय स

विषयालुक्तम्

प्रथम वर्ग

विषय

		पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्यायन : उद्देश	१
मदहारी भाषा	८
गीर्ण	९
विद्युत्प्रतिमा	१८
सूत्रसम्बन्ध	१९
२-१० अध्यायन : समुद्र आदि कुमारों की तिथि	२१

द्वितीय वर्ग

उद्देश	२२
मदहारीभाषा	२२
अध्याय आदि का वर्णन	२२

तृतीय वर्ग

उद्देश	२३
अध्याय आदि पद	२३
बहुतर बर्णन	२४
प्रतिनिधान	२७

२-६ अध्यायन	२८
बीसह पूर्व	३१

मध्यम अध्यायन : सारण	३२
----------------------	------	----

अष्टम अध्यायन : सप्तसुखमार	३३
----------------------------	------	----

उद्देश	३३
सप्त अन्तगारों का सङ्ग	३३
सप्त अन्तगारों का देवकी के पर में प्रवेश	३४
देवकी की पुनः प्राप्ति की शक्ति और समाधान	३६
गुप्तों की पहचान	३७
देवकी की पुनर्प्राप्ति	४६
सुख द्वारा चिन्तानिवारण का उपाय	४४
देवकी देवी की आराधना	४८

द्वयुक्त वा द्विगुणित	११२
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	११२
द्वयुक्त वा द्विगुणित	११६
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	११७
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	११८
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१२०
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१२२
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१२४
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१२५

४-१४ अक्षरानुसंधान : अक्षरानुसंधान	..	१३०
१३ अक्षरानुसंधान : अक्षरानुसंधान	१३१
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१३१
द्वयुक्त वा द्विगुणित	१३२
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१३६
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१३७
१४ अक्षरानुसंधान : अक्षरानुसंधान	१४१

संज्ञासूची

१-१३ अक्षरानुसंधान : अक्षरानुसंधान	..	१४४
------------------------------------	----	-----

संज्ञासूची

अक्षरानुसंधान : अक्षरानुसंधान	१४६
द्वयुक्त	१४६
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१४७
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१४८

द्विगुणित अक्षरानुसंधान : द्विगुणित	१४४
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१४४

द्विगुणित अक्षरानुसंधान : द्विगुणित	१४६
-------------------------------------	------	-----

द्वयुक्त अक्षरानुसंधान : द्वयुक्त	१४६
द्वयुक्त वा द्विगुणित	१४६

द्वयुक्त अक्षरानुसंधान : द्वयुक्त	१५०
द्वयुक्त वा द्विगुणित	१५०

द्वयुक्त अक्षरानुसंधान : द्वयुक्त	१५२
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१५२

द्वयुक्त अक्षरानुसंधान : द्वयुक्त	१५७
द्वयुक्त वा द्विगुणित	..	१५७

घडुंन का प्रतिशोध	११५
राजगृह नगर में घातक	..	११५
धाधक मुदगंन धंटी	.	११६
भ० महावीर का पदार्पण	.	११७
मुदगंन का बन्दनायं गमन	.	११८
मुदगंन की घडुंन द्वारा उपमर्ग	..	१२०
मुदगंन और घडुंन की भगवत्पुंषामना	...	१२२
घडुंन की प्रश्रग्वा	.	१२४
परिग्रह-गहन और मिट्टि	.	१२५

४-१४ अष्टमः : कावप आदि गावापति . १३०

१५ अष्टमः : अतिमुक्त	...	१३३
गौतमस्वामी की भिक्षाचर्या और अतिमुक्त	१३३
गौतम और अतिमुक्त का समागम	१३५
अतिमुक्त का गौतम के गाय बन्दनायं गमन	..	१३६
अतिमुक्त की प्रश्रग्वा . मिट्टि	१३७

१६ अष्टमः : अनाथ १४१

सप्तम धर्ग

१-१३ अष्टमः : मंदा आदि १४४

अष्टम धर्ग

प्रथम अष्टमः : काली	१४६
उत्सव	१४६
काली आर्या का रत्नावली तप	१४७
काली आर्या की अग्निम साधना-मिट्टि	१४९
द्वितीय अष्टमः : सुकाली	१४४
सुकाली का वनरावली तप	..	१४४
तृतीय अष्टमः : महाकाली का सप्तसिंहनिष्पीडित तप	१४६
चतुर्थ अष्टमः : कृष्णा	१४९
कृष्णा देवी का महासिंहनिष्पीडित तप	१४९
पंचम अष्टमः : सुकृष्णा	१६०
सुकृष्णा का भिक्षुपतिमा-प्रारधन	..	१६०
षष्ठ अष्टमः : महाकृष्णा	..	१६५
महाकृष्णा का लघुसर्वतोभद्र तप	..	१६५
सप्तम अष्टमः : वीरकृष्णा	१६७
वीरकृष्णा का महासर्वतोभद्र तप	..	१६७

पढमो वगो

पढमं अज्जयणं

अज्ञेय

१—तेणं कालेणं तेणं समएणं चपानामं नयरी । पुण्णभद्दे वेइए-वण्णओ । तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्ममे समोसरिए । परिसा तिग्गया जाव [धम्मो कहिओ] । परिसा जामेव विंसि भाउग्गुया तामेव विंसि] पडिगया । तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अंतेवासी अज्जजंबू जाव [नामं अणगारे कासवागेत्तेणं सत्तस्सेहे समचउरंससंठाणसठिए वज्जरिसहणारायसंघयणे कणयपुलघनिह-सपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे घोरात्ते घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरवंमचेरवासी उच्छ्रद्धसारीरे संखित्तियउलतेयलेस्से अज्जसुहम्मस्स घेरस्स भवूरसामंते उड्डंजानू अहोसिरे भाणकोट्टो-वगए सजमेणं तवसा अप्पाणं नावेमाणे विहरइ ।

तए णं से अज्जजंबू नामं अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजाय-संसए संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नसंसए, उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नसंसए, समुप्पन्न-कोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति । उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्ममे घेरे तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता अज्जसुहम्ममे घेरे तिबलुत्तो प्रायाहिणपयाहिणं करेइ । करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स घेरस्स णच्चासग्गे नातिवूरे सुस्ससमाणे णमंसमाणे भनिमुहं पंजलिउडे विणएणं] पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

उस काल और उस समय मे चपा नाम की नगरी थी । उसके बाहर पूर्णभद्र नामक यक्ष-मन्दिर था । उस काल और उस समय मे आर्य मुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे । नगर-निवासी जन [धर्म-देशना श्रवणार्थ नगर मे निकले । यावत् आर्य मुधर्मा स्वामी ने धर्म-देशना दी । (धर्म-कथन सुनकर) जनता जिम दिशा से आई थी उस दिशा मे] वापस लौटी । उस काल और उस समय मे आर्य मुधर्मा स्वामी के आर्य जंबू [नाम के अनगार (शिष्य) थे । उनका काश्यप गोत्र था । उनका शरीर मात हाथ ऊँचा था । उनका संस्थान समचतुरस्र-ममचौरम था । उनका सहनन वज्र-ऋषभ-नाराच था । कमीटी पर खीची हुई सोने की रेखा के ममान तथा कमल की केसर के समान वे गौरवर्ण थे । वे उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, महातपस्वी, उदार, कर्मशुभ्रों के लिए धीर, धीर गुणवाने, धीर तपस्वी, धीर ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, अतएव शरीर-सत्कार के स्यामी थे । दूर-दूर तक फैलने वाली विपुल तेजोलेखा को उन्होंने अपने शरीर में सक्षिप्त कर रखी थी । वे—जम्बू स्वामी, आर्य मुधर्मा स्वामी के न बहुत दूर और न बहुत नजदीक, ऊर्ध्वजानु और भद्र-शिर होकर अर्थात् दोनों घुटनों को खड़े करके एवं गिर को नीचे की तरफ झुकाकर ध्यानरूपी कोष्ठक मे प्रविष्ट होकर समय और तप मे अपने आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

तत्पश्चात् धर्म जंबूनामक अनगार को तत्त्व के विषय मे श्रद्धा (निज्ञाना) हुई, मशय हुआ, कुतूहल हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा हुई, विशेष रूप मे मशय हुआ और विशेष रूप से श्रद्धा हुआ ।

बोधव है। यहाँ पर उग "वात" का यह अर्थ हुआ कि इस अवसरपरिणीके चतुर्थ आरे मे इस आगम की वाचना दी गई थी। परन्तु हमने यह स्पष्ट नहीं कि चतुर्थ आरे मे किम समय वाचना दी गई थी? क्योंकि चतुर्थ आग ४० हजार वर्ष कम छोटा-कोटी गागरोपम का है। अत इम वात की "तेषु ममण" ये पद देकर स्पष्ट किया है। उम समय का यह अर्थ है कि जिम समय आयं मुधर्मा स्वामी विवरण करने हुए चपा नगरी मे पधारे, उम समय उन्होंने जम्बू स्वामी को प्रस्तुत आगम की वाचना दी। हमने यह ध्वनि न होता है कि प्रस्तुत आगम की वाचना भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद दी गई थी। वृत्ति मे अभयदेव मूरिजी ने काल मे अवसरपरिणी का चतुर्थ विभाग अर्थात् चौथा आर और 'ममण' का विशेष वात अर्थ किया है।

हमके पदचान् यह बताया गया है कि उम काल और उम समय मे आयं मुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे और नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य मे ठहरे। उनको शरीर-मपद्रा, उनके कुल एव उनके गुणों का वर्णन प्रस्तुत आगम मे नहीं किया गया है, क्योंकि नायाधम्मरहासो मे इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। अत, यहाँ केवल संकेत कर दिया है। हमने यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत आगम के प्रतिपादक भगवान् महावीर के पचम गणधर एव प्रथम पट्टधर आयं मुधर्मा स्वामी से और उनके शिष्य आयं जम्बू स्वामी प्रस्त-कर्ता थे।

प्रस्तुत विवरण मे ऐसा प्रश्न होता है कि आयं मुधर्मा स्वामी का विवरण प्रस्तुत करनेवाले उद्योप—उपोद्धान के कर्ता कौन हैं? हमका समाधान यह है कि जेमे मुधर्मा स्वामी ने गीतमादि गणधरों का उल्लेख किया है, उगो तरह आयं जव स्वामी के बाद होनेवाले प्रभवादि आचार्यों ने इस उल्लेख मे आयं मुधर्मा स्वामी का वर्णन किया है। अत ऐसा ही परिलक्षित होता है कि हम उपोद्धान के कर्ता आचार्य प्रभवादि ही हो।

इस प्रकार "तेषु ममण" शब्द का उपलक्षण-अर्थ यह होता है कि—चतुर्थ आरक के अनन्तर आयं मुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे और चपा नगरी के बाहर पूर्णभद्रनामक चैत्य मे ठहरे। उनके आगमन का शुभ-गदेश सुनकर नागरिक उनके दर्शनार्थ आए और धर्मोपदेश सुनकर वापस शौठ गये। उम समय उनके शिष्य आयं जव स्वामी विनय-भक्ति एव श्रद्धापूर्वक उनके चरणों मे उपस्थित होकर विनम्र शब्दों मे बोले, क्या बोलें, यह आगे कहा जाएगा।

प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकर्ता ने वर्णन-क्षेत्र एव वर्णन-कर्ता आदि के नाम का उल्लेख मात्र किया है। वर्णन-स्थान एव वर्णन-कर्ता के सम्पूर्ण स्वरूप को जानने के लिये अन्य आगमों को देखने का संकेत कर दिया है। अत चपा नगरी एव उसमे रहे हुए पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन एव उसमे पधारे हुए आयं मुधर्मा स्वामी के जीवन-परिचय से लेकर परिपद के प्रावागमन तक का वर्णन शौपपातिक आदि आगमों मे जानना चाहिए। उम मे चपा नगरी एव पूर्णभद्र चैत्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। गेमे स्थानों पर दन वर्णित विषयों का समूचक शब्द है—“वण्णसो।”

'वण्णसो' यह पद वर्णक का बोधक है। वर्णन करनेवाला प्रकरण वर्णक शब्द से व्यवहृत किया जाता है। आगे जहाँ-जहाँ जिम पद के आगे वर्णक पद का उल्लेख मिले, वहाँ-वहाँ पर उस पद से गगूचित पदार्थ का वर्णन करनेवाले पाठ की ओर संकेत रहेगा।

यहाँ यह प्रश्न ही सकता है कि आगमों मे अंग सूत्रों का ही स्थान प्रमुख होने पर भी यहाँ अंग सूत्रों मे वर्णित पाठों के लिए पाठकों को अगवाह्य आगमों पर क्यों अवलंबित किया जाता है?

ध्यायं मुधर्मा स्वामी बोले—“जम्बू ! भगवन् भगवान् ने अष्टम अन्तःकृद्भाग के आठ वं प्रतिपादन किए हैं ।”

बिबेचन—आगम-परिपाटी के पर्यवमोहन से यह स्पष्ट होता है कि सर्व आगम ध्यायं ज स्वामी और ध्यायं मुधर्मा स्वामी के प्रश्नोत्तर रूप है । ध्यायं जब स्वामी प्रश्न करते हैं और अ मुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं । यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमों के रूप में दिखाई दे है । इसकी स्पष्टता प्रस्तुत सूत्र में भलवती है । अन्तःकृद्भाग सूत्र का शुभारंभ इस प्रकार के प्रश्नोत्तर में ही होता है । इस सूत्र में प्रश्नोत्तर द्वारा ध्यायं जब स्वामी ने अष्टम अन्तःकृद्भाग आगम के श्रवण वर्णन की जिज्ञासा प्रस्तुत की है ।

वस्तुतः आगमों के तीन प्रकार हैं—(१) आत्मागम, (२) अनन्तरागम और (३) परम्परागम ।

गुरुजनों के उपदेश बिना स्वयमेव आगमों का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है । तीर्थंकर परमात्मा के निये अर्थागम आत्मागम रूप हैं और गणधरों के लिये सूत्रागम आत्मागमरूप हैं (मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम और सूत्र और अर्थ उभयरूप आगम को तदुभयागम कहते हैं) ।

स्वयं आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है । गणधर भगवान् के लिये अर्थागम अनन्तरागम रूप है । तथा जब स्वामी आदि गणधर-निष्यो लिये सूत्रागम अनन्तरागमरूप है ।

आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न होकर जो आगम-ज्ञान उनके निष्य-प्रतिष्य आदि व परम्परा में प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है । जैसे जब स्वामी आदि गणधरनिष्य के लिये अर्थागम परम्परा रूप है । तथा इन के बाद के सभी गांधकों के लिये सूत्र एव अर्थ दो प्रकार के आगम परम्परागम हैं ।

अतः यह स्पष्ट ही है कि प्रस्तुत अन्तःकृद्भाग सूत्र अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर परमात्मा के लिये आत्मागम है, गणधरों के लिये अनन्तरागम है और गणधर-निष्यो के लिये परम्परागम है । इस प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरों के लिये आत्मागम, गणधर-निष्यो के लिये अनन्तरागम और गणधर-प्रतिष्यो के लिये परम्परागम है ।

अर्थरूप में आगमों का प्रतिपादन तीर्थंकर परमात्मा करते हैं, गणधर उन्हें सूत्र रूप में सुनते हैं । वस्तुतः गणधर भगवान् तीर्थंकर परमात्मा में प्राप्त किए हुए पदार्थ के प्रचारक । स्वयं उनके द्रष्टा या श्रष्टा नहीं हैं ।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि ध्यायं मुधर्मा ने जब अनन्तरागम से कहा—हे जम्बू ! भगवान् महावीर ने अन्तःकृद्भाग सूत्र के आठ वर्ग प्रतिपादन किये हैं ।

इस सूत्र में प्रयुक्त “वर्णा” शब्द वर्ग का बोधक है । वर्ग का अर्थ होता है शास्त्र का एक विभाग, प्रकार या अध्ययनों का समूह ।

ध्यायं मुधर्मा स्वामी के प्रस्तुत विचारों को जानकर ध्यायं जब स्वामी ने जो निवेदन प्रस्तुत किया वह अब तृतीय सूत्र में दर्शाया जाता है—

गौतम

५—“एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नपरो होत्था । दुवालसजोयणायामा, नव-जोयण-वित्थिण्णा, घणवइ-मइ-निम्माया, चामीकर-पागारा, नानामणि-यंचवण्ण-कविसीत्ताम-मंडिया, मुरम्मा, अत्तकापुरी-संकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगमूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिहवा पडिहवा ।

तोसे णं बारवईए नपरोए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था । तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था । वण्णप्पो । मुरप्पिए नामं जवत्तापतणे होत्था, पोराने, से णं एणेणं वणसंडेणं सव्वप्पो समंता संपरिवित्तं, असोगधरपायवे ।”

(आर्य मुधर्मा स्वामी जंबू अनगर के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—) “जंबू ! उस काल और उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी । वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वैश्रमण देव कुबेर के कौशल में निर्मित, स्वर्ण-प्राकारों (कोटों) से युक्त, पचवर्ण के मणियों से जटित कमूरों से सुगोभित थी और कुबेर की नगरी अलकापुरी मद्दश प्रतीत होती थी । प्रमोद और श्रीटा का स्थान थी, माक्षान् देवलीक के भमान देवने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी ।

उस द्वारका नगरी के बाहिर ईशान कोण में रैवतक नाम का पर्वत था । उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था । उस उद्यान का वर्णन औपपातिकसूत्र के वन-वर्णन के समान जान लेना चाहिए । वहाँ मुरप्रियनामक यक्ष का एक मंदिर था, वह बहुत प्राचीन था और चारों ओर से अनेकविध वृक्षममुदाय में युक्त वनसङ्घ से घिरा हुआ था । उस वनसङ्घ के मध्य में एक सुन्दर अगोक वृक्ष था ।”

विवेचन—“बारवई”—इस पद का संस्कृतरूप द्वारवती होता है । यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है । वैदिक परंपरा में इगो को द्वारका कहते हैं । इस प्रकार द्वारवती तथा द्वारका ये दोनों शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं ।

इस सूत्र के अनुसार द्वारका नगरी “दुवालसजोयणायामा (द्वादशयोजनयामा) अर्थात् बारह योजन लम्बी थी । प्रस्तुत में योजन का माप “आत्मांगुल” में करना है । जिस काल में जो मनुष्य होते हैं उनके अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं । १६ अंगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषों का एक कोम, तथा चार कोस का एक योजन होता है । इस तरह द्वारका नगरी की लम्बाई ४८ कोस की थी । ४८ कोम जितने लम्बे विंगल क्षेत्र में द्वारका नगरी को बसाया गया था ।

‘घणवइ-मइ-निम्माया’ अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ, उसे धनपतिमति-निर्माता कहते हैं । प्रश्न होता है कि क्या मर्त्यलोक में कोई देव कुबेरदि नगरी का निर्माण करने आते हैं ?

इसका समाधान एक रहस्य में है—“जब यादव जरासंध प्रतिवामुदेव के आतंक से आतंकित हो गए और शौर्यपुर को छोड़कर समुद्र के समीप सौराष्ट्र में पहुँचे, तब नगरी के योग्य तथा मुरक्षिन स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहाँ अष्टम तप किया, धनपति वैश्रमण का आराधन किया ।

गौतम

५—“एवं खलु जंबू ! तेषां कालेणं तेषां समएणं बारवई नामं नमरी होत्या । दुवात्तसज्जोपणा-
यामा, नव-जोयण-विस्तिण्णा, धणवइ-मइ-निम्माया, चामोकर-यागारा, नानामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-
मंडिया, मुरम्मा, अलकापुरी-संकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चवखं देवसोगमूया पासादीया
दरिसिण्ज्जा अभिहवा पडिहवा ।

तोते णं बारवईए णयरोए बहिया उत्तरपुररियमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए
होत्या । तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्या । वण्णमो । मुरण्णिए नामं जक्खायतणे
होत्या, पोराने, ते णं एणेणं वणसंडेणं सव्वमो समंता संपरिविहत्ते, असोगवरपायवे ।”

(आर्य मुधर्मा स्वामी जबू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—) “जबू ! उम काल और
उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी । वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वैश्रमण
देव कुबेर के कौशल में निर्मित, स्वर्ण-प्राकारों (कोटों) में युक्त, पचवर्ण के मणियों में जड़ित बगूरों
से सुशोभित थी और कुबेर की नगरी अलकापुरी मद्दश प्रतीत होनी थी । प्रमोद और श्रीडा का
स्थान थी, माक्षात् देवलोक के समान देखने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय थी, अभिरूप
थी, प्रतिरूप थी ।

उम द्वारका नगरी के बाहिर ईशान कोण में रैवतक नाम का पर्वत था । उस रैवतक पर्वत
पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था । उस उद्यान का वर्णन श्रीपपातिकसूत्र के वन-वर्णन के समान
जान लेना चाहिए । वहाँ मुरप्रियनामक वृक्ष का एक मंदिर था, वह बहुत प्राचीन था और
चारों ओर से अनेकविध वृक्षसमुदाय में युक्त वनखंड से घिरा हुआ था । उस वनखंड के मध्य में एक
सुन्दर झरोका वृक्ष था ।”

विवेचन—“बारवई”—इस पद का संस्कृतरूप द्वारवती होता है । यह कृष्ण महाराज की
नगरी का नाम है । वैदिक परंपरा में इसी को द्वारका कहते हैं । इस प्रकार द्वारवती तथा द्वारका
ये दोनों शब्द एक ही नगरी के बोधक हैं ।

इस सूत्र के अनुसार द्वारका नगरी “दुवालमजोपणायामा (द्वालमजोपणायामा) धर्मात्
बारह योजन लम्बी थी । प्रस्तुत में योजन का माप “आत्मागुल” में करना है । जिस बाल में जो
मनुष्य होते हैं उनके धरने अंगुल को आत्मागुल कहते हैं । ६६ अंगुल का एक धनुष होता है और दो
हजार धनुषों का एक कोस, तथा चार कोस का एक योजन होता है । इस तरह द्वारका नगरी की
लम्बाई ४८ कोस की थी । ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र में द्वारका नगरी की
बसाया गया था ।

‘धणवइ-मइ-निम्माया’ धर्मात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ, उसे
धनपतिमति-निर्माता कहते हैं । प्रश्न होता है कि क्या मत्स्यलोक में कोई देव कुबेरदि नगरी का
निर्माण करने आते हैं ?

इसका समाधान एक रहस्य में है—“जब यादव जरागध प्रतिवामुदेव के धानक में धानदिन
हो गए और शीमपुर की छोड़कर समुद्र के समीप सौराष्ट्र में पहुँचे, तब नगरी के योग्य तथा मुरशिण
स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहाँ भट्टम तप किया, धनपति वैश्रमण का धाराधन किया ।

कौटुम्बिक, इभ्य, थ्रेप्टो, सेनापति], मार्यवाह—इन सब पर तथा द्वारका एव आधे भारतवर्ष पर आधिपत्य यावत् [पुरोर्वानित्व (आगेवानी), भर्तृत्व (पोषकता), स्वामित्व, महत्तरत्व (बड़प्पन) और आज्ञाकारक सेनापतित्व करते हुए—पालन करते हुए, कथा-नृत्य, गीतिनाट्य, वाद्य, वीणा, करताल, नृत्य, मृदंग की कुशल पुरुषों के द्वारा बजाये जाने में उठनेवाली महाध्वनि के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए] विचरते थे ।

विशेष—प्रस्तुत मूत्र में द्वारकाधीन कृष्ण महाराज के राज्य-वैभव का वर्णन किया गया है । इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण की राजधानी में राजयोग्य सभी वस्तुएं उपलब्ध थी और इनका राज्य आर्थिक, सामाजिक, सैनिक सभी दृष्टियों से सम्पन्न था ।

‘दमहं दमारणं’ इन पदों की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अमरदेवमूरि कहते हैं—

‘समुद्रविजयोऽशोम्यस्तिमित. सागरस्तथा ।

हिमवानचलश्चैव, धरणं पूरणस्तथा ॥ १ ॥

अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान् ।

वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती मद्रो च विश्रुते ॥ २ ॥

दम च तेऽर्हाश्च-पूण्याः इति दशार्हाः ।’

अर्थात्—कृष्ण महाराज के पिता वसुदेव दम भाई थे । (१) समुद्रविजय, (२) अशोम्य, (३) स्तिमित, (४) सागर, (५) हिमवान्, (६) अचल, (७) धरण, (८) पूरण, (९) अभिचन्द्र, (१०) वसुदेव । ये दसों वड्डे बली थे । समुद्रविजय इनमें सबसे बड़े थे और वसुदेव सबसे छोटे । इन के कुन्ती और मद्रो ये दोनों बहिनें थी ।

‘पञ्चण्णपामोक्त्वाणं अद्घुट्ठाणं कुमारकोडोणं’—अर्थात् माडे तीन करोड़ कुमार थे और इन में प्रद्युम्न प्रमुख थे ।

यहाँ एक प्रश्न ही सकता है कि कुमारों की इतनी बड़ी संख्या क्या द्वारका नगरी में ही विद्यमान थी ? या कुछ राजकुमार द्वारका में और कुछ द्वारका से बाहर रहते थे ? इसका समाधान यह है कि सूत्रकार ने कुमारों की जो संख्या बतलाई है, वह केवल द्वारकानिवासी राजकुमारों की नहीं, प्रस्तुत यह सभी राजकुमारों की है । महाराज कृष्ण के समस्त राज्य में इनका निवास था । उस समय कृष्ण महाराज का राज्य वेताइय पर्वत तक फैला हुआ था, अतः कुमारों की उक्त संख्या भारत वर्ष के तीनों खंडों में निवास करती थी ।

सूत्रकार ने आगे चलकर ‘उग्गसेणपामोक्त्वाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं’ ये पद दिये हैं । इनका अर्थ है—सोलह हजार राजा थे, इनके प्रमुख महाराज उपसेन थे । इन के राज्य भी तीनों खंडों में थे और तीनों खंडों में इनका निवास था ।

सूत्रकार ने कुमारों की, राजाओं की तथा अन्य लोगों की संख्या का जो निर्देश किया है इसके पीछे यही भावना है कि कृष्ण महाराज के राज्य में ये सब लोग रहते थे और इन सब पर कृष्ण महाराज राज्य करते थे । जिस प्रकार आजकल जनगणना द्वारा जनता की संख्या का पता लगाया जाता है और देश के निवासियों को जाति, धर्म और भाषा आदि का बोध प्राप्त किया जाता है, ठीक इसी प्रकार उस समय वसुदेव कृष्ण के राज्य में कितने कुमार थे ? कितने राजा थे ? कितना सैनिक

सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाप्पो य ।

जोत्तवण-पाणिग्गहणं, कण्णा दासा य भोगा य ॥^१

नवरं गोयमो^२ अट्टुहं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणि गेण्हावेत्त, अट्टुओ दासो ।

उम द्वारका नगरी में अन्धकवृष्णि नाम का राजा निवास करता था । वह हिमवान्—हिमालय पर्वत को तरह महान् था । (उमकी ऋद्धि-समृद्धि का वर्णन औपपानिक सूत्र में किया गया है ।) अन्धकवृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी । कभी किसी समय वह धारिणी रानी अन्धन्न वर्णित (पुण्यवान् जन के योग्य) उत्तम शय्या पर शयन कर रही थी, जिसका वर्णन महाबल (के प्रकरण में वर्णित शय्या के) समान समझ लेना चाहिये । तत्परचात्—

स्वप्न-दर्शन, पुत्रजन्म, उसकी बाल-लौला, कलाज्ञान, यौवन, पाणिग्रहण, रम्य प्रासाद एवं भोगादि—(यह सब वर्णन भी महाबल जैसा ही समझना) । विशेष यह कि उम बालक का नाम गौतम रखा गया, उसका एक ही दिन में आठ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा देहज में आठ-आठ प्रकार की वस्तुएं दी गईं ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में गौतम कुमार के गर्भ में आने से लेकर विवाह तथा विषयभोगों के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र में परमाराध्य भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में पहुँच कर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते हैं—

८—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्टुनेमी आइगरे^३ जाव [संजमेण तवसा अत्पाणं भावेमाणे] विहरइ, चउडविहवा देवा आगया । कण्हे वि गिग्गए । धम्मं सोच्चा “जं नवरं देवाणुप्पिया ! धम्मापियरो आणुच्छामि । देवाणुप्पियाणं [अंतिए मुंढे भविता आगाराओ अणगारियं पट्ठयामि] एवं जहा मेहे जाव (तहा गोयमे वि) [सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ । करित्ता जेणामेव समणे भगवं अरिट्टुनेमी तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता समणं भगवं अरिट्टुनेमि तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ । करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता तमंसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्तपलित्तं णं भंते ! लोए जराए मरणेण य । ते जहा नामए केई गाहावई आगारंसि भियायमाणंसि जे तत्तय भंढे भवइ अत्पभारे मोत्तल्लगुरए तं गहाय दयाएए एगंतं अरवक्कमइ, एस मे णित्तयारिए समणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णित्तसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव मम वि एगे आमा भंढे इट्ठे कते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्तयारिए समणे संसारवोच्छेदयकरे भविस्सइ । तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पट्ठयावियं, सयमेव मुंढावियं, सेहावियं, तिक्कलावियं, सयमेव आयार-भोय-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मापावत्तिय धम्ममाइ वित्तयं ।

तए णं समणे भगवं अरिट्टुनेमी सयमेव पट्ठयावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्कइ-एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसीयव्वं तुयट्ठियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्टे णो पमाएयव्वं ।

१. यह वाक्य अंगमुत्तारि में नहीं है ।
 २. M. C. Modi द्वारा सम्पादित अतगड में 'गोयमो नामेण' पाठ है ।
 ३. सूत्र नं. २ में प्रस्तुत पाठ पूर्ण किया गया है । यहाँ विहरइ हेतु अपूर्ण पाठ ब्रानेट में पूर्ण किया गया है ।

मुनिगदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाघो य ।

जोस्वण-पाणिग्गहणं, कण्णा वासा य भोगा य ॥^१

नवरं गोयमो^२ अट्टुहं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणि गेण्हावेत्ति, अट्टुभो दाघो ।

उस द्वारका नगरी में अन्धकवृष्णि नाम का राजा निवाम करता था । वह हिमवान्—हिमालय पर्वत की तरह महान् था । (उमकी ऋद्धि-अमृद्धि का वर्णन धीरपात्रिक मूत्र में किया गया है ।) अन्धकवृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी । कभी कभी समय बह धारिणी रानी अन्धक वृष्णि (पुण्यवान् जन के योग्य) उत्तम द्रव्या पर दान्यन कर रही थी, जिसका वर्णन महाबल (के प्रकरण में वृष्णि द्रव्या के) समान समझ लेना चाहिये । तत्परवान्—

स्वप्न-दर्शन, पुत्रजन्म, उमकी बाल-तोला, कलाज्ञान, यौवन, पाणिग्रहण, रम्य प्रागाद एव भोगादि—(यह सब वर्णन भी महाबल जैसा ही समझना) । विशेष यह कि उस बालक का नाम गौतम रखा गया, उसका एक ही दिन में घ्राट थोड़ा राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा देहेज में घ्राट-घ्राट प्रकार की वस्तुएं दी गई ।

वियेचन—प्रस्तुत सूत्र में गौतम कुमार के गर्भ में घ्राते में लेकर विवाह तथा विषयभोगों के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र में परमारारम्य भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में पहुँच कर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते हैं—

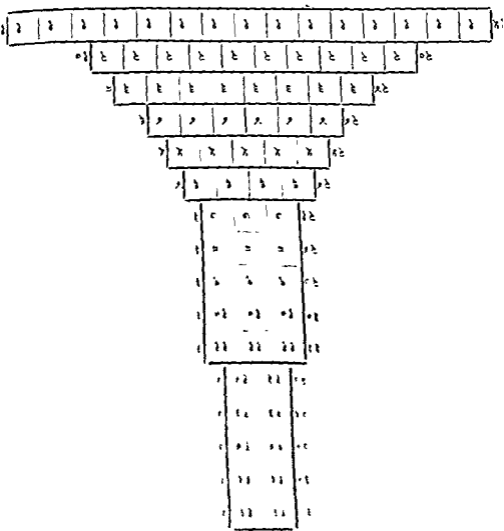
८—तेणं कासेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्टुनेमी घ्राइगरे^३ जाव [संजमेण तवगा अत्थाणं भावेमाणे] विहरइ, चउत्थिहा देवा आगया । क्खे वि णिगए । धम्मं सोक्खा "जं नवरं देवाणुत्पिया । अम्मपियरो आपुच्छामि । देवाणुत्पियाणं [अतिए मु डे भविता आगाराओ अणगारियं पक्खयामि] एवं जहा मेहे जाव (तहा गोयमे वि) [सयमेव पंचमृष्टियं सोयं करेइ । करित्ता जेणामेव समणे भगवं अरिट्टुनेमी तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता समण भगवं अरिट्टुनेमि निवत्तुत्तो घ्रायाहिणं पयाहिणं करेइ । करित्ता धंदइ, नमंतइ, वंदित्ता नमंतित्ता एवं वयासी—

घ्रातित्ते णं भंते ! सोए, पतित्ते णं भंते ! सोए, घ्रातित्तपतित्ते णं भंते ! सोए जरए मरणेण य । से जहा तामए वेई गाहावई आगारंति भिमायमाणंमि जे तए भंते भवइ अत्थमारो मोत्तगुए तं गहाय घ्रायाए एगंतं अक्खमइ, एम मे णिरयारिए समाने पच्छा पुरा टियाए मुत्ताए तमाए णित्तेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव मम वि एगे घ्राया भंते इट्ठे क्खि विए मत्तान्ने मणामे, एत मे णिरयारिए समाने संसारखोच्छेयकरे भविरसइ । सं इच्छामि णं देवाणुत्पियाहिं मयमेव पक्खावियं, सयमेव मुंशवियं, सेहावियं, तिक्खतावियं, सयमेव आयाद-नोयद-विणय-वेणइए-वरण-करण-जाया-मायावत्तिय धम्ममाइवित्तयं ।

तए णं समणे भगव अरिट्टुनेमी सयमेव पक्खावेइ, सयमेव आयाद० जाव धम्ममाइवसइ-एवं देवाणुत्पिया ! गंतव्वं चित्ठियव्वं णिसीयव्वं सुपट्टियव्वं मुंजियव्वं भाणियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाए पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्मि च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं ।

१. यह वाक्य अमृतुत्तापि में नहीं है ।
 २. M. C. Modi द्वारा सम्पादित संस्करण में 'सोमो नामेण' पाठ है ।
 ३. सूत्र नं. २ में प्रस्तुत पाठ पूर्ण किया गया है । यहाँ विहाद हेतु अमृतं पाठ ब्रह्म के पूर्ण किया गया है ।

संविधान—एक का अर्थ होता है—सर्वोच्च मण्डल में विद्यमान होने वाले अधिकारों को संविधान के अर्थ में माना जाता है।



वीओ वगो

लक्षेप

१—“जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडवसाणं पट्टमस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, वोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडवसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं अज्जभयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडवसाणं वोच्चस्स वगट्ठ अज्जभयणा पण्णत्ता ।

सगहणी-गाहा

अवलोभसागर खलु समृद्धिहमयंतघचल नामे य ।
धरणे य पूरणे वि य अभिचंदे चैव अट्टमए ॥

अक्षोभादि-पद

जहा पढमो वगो तथा सव्वे अट्ट अज्जभयणा गुणरघणतवोकम्भं । सोलसवासाइं परिमासेत्तुंजे मासियाए सत्तेहणाए सिद्धी ।

आर्यं जवू ने आर्यं मुधर्मा स्वामी से पूछा—हे भगवन् ! अमए भगवान् महावीर ने अतदशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो द्वितीय वर्ग के कितने अध्ययन फरमाये हैं ?

मुधर्मा स्वामी इसका समाधान करते हुए बोले—हे जवू ! अमए भगवान् महावीर ने अतदशा के द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन फरमाये हैं । उस काल और उस समय में द्वा नाम की नगरी थी । महाराज वृष्णि राज्य करते थे । रानी का नाम धारिणी था । आठ पुत्र थे—

(१) अशोभकुमार, (२) सागरकुमार, (३) समुद्रकुमार, (४) हैमवन्तकुमार, (५) अकुमार, (६) धरणकुमार, (७) पूरणकुमार, (८) अभिचन्द्रकुमार । जैसे—प्रथम वर्ग में गौतम बुद्ध का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इनके आठ अध्ययनों का वर्णन भी समझ लेना चाहिए । इसी गुणरत्न तप का धाराधन किया और १६ वर्ष का समय पालन करके अन्त में शत्रुंजय पर्वत एक मास की सत्सेवना द्वारा सिद्धिपद प्राप्त किया ।

तत्पश्चात् अनोयस कुमार को आठ वर्ष में कुछ अधिक उम्र वाला दूसरा जानकर ने उसे कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्य ने अनोयस कुमार को गणित जि है ऐसी लेख आदि शकुनिस्त (पक्षियों के गन्द) तक को बहतर कलाएँ मूत्र से, अर्थ से श्रो मिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

वे कलाएँ इस प्रकार हैं—(१) लेखन, (२) गणित, (३) रूप बदलना, (४) (५) गायन, (६) वाद्य बजाना, (७) स्वर जानना, (८) वाद्य सुधारना, (९) ममान ता (१०) जुझा खेलना (११) लोगों के साथ वादविवाद करना (१२) पासों से खेलना (१३) खेलना (१४) नगर की रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के मयोग में वस्तु का निम्न (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को सस्कार करके शुद्ध उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र बनाना, रगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या बनाना, शयन करने की विधि आदि (२१) आर्या छद को पहचानना और बनाना (२२) पहेंलियाँ बनाना और (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा में गाथा आदि बनाना (२४) प्राकृत भाषा आदि बनाना (२५) गीति छद बनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप छद) बनाना (२७) सुवर्ण उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि (२८) नई चादी बनाना, उसके आभूषण बनाना आदि (२९) चूर्ण—गुलाब अथौर आदि बनाना और उसका उपयोग करना (३०) गहने पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना-प्रसाधन करना (३२) स्त्री के लक्षण (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण (३६) गाय बैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गा के लक्षण जानना (३८) ध्वज-लक्षण जानना (३९) लक्षण जानना (४०) खड्ग-लक्षण जानना (४१) मणि के लक्षण जानना (४२) काकण लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या—मकान दूकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेना के प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर बसाने आदि की कला (४६) व्यूह-मोर्चा (४७) विरोधी के व्यूह के नामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सेनामचालन (४९) प्रतिचार—शत्रुसेना के ममक्ष अपनी सेना को चलाना (५०) चक्रव्यूह—चाक के आकार बनाना (५१) गरुड़ के आकार का व्यूह बनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य यु (५४) विदीप युद्ध करना (५५) अत्यन्त विदीप युद्ध करना (५६) अटिठ (यटि या अस्थि करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) बाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०) बहुत और धाँडे को बद्ध दिगलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण सबधि होना (६३) चादी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) मूत्र का छेदन (६६) घेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कड आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्च्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (म करना और (७२) बारू धूरु आदि पक्षियों की बोली पहचानना।

तत्पश्चात् वह कलाचार्य अनोयस कुमार को गणित प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिस्त बहतर कलाएँ मूत्र (मूत्र पाठ) में, अर्थ में और प्रयोग में मिद्ध करता है तथा सिखलाता है करवा कर और मिग्गता कर माना-पिता के पाम ले जाता है।

तत्र अनोयस कुमार के भाता-पिता ने कहा :

सप्तम अध्यायन

सारणे

४—सेणं कालेणं तेणं समएणं चारवईए नयरीए, जहा पउमे, नवरं-वमुदेवे राया । धारिणी देवी । सीहो सुमिणे । सारणे कुमारे । पण्णासओ दाओ । चउद्दम पुध्वा । चीसं यासा परिआओ । सेसं जहा गोयमस्स जाव' सेत्तुंजे सिद्ध ।

उस काल तथा उस समय में द्वारका नगरी थी । उसमें वसुदेव राजा थे । उसी राती धारिणी थी । उसने गर्भाधान के पदचात् स्वप्न में सिंह देखा । समय जाने पर बालक को जन्म दिया और उसका नाम सारण कुमार रखा गया । उने विवाह में पचास-पचास वस्तुओं का दहेज मिला । सारण कुमार ने सामायिक से लेकर १४ पूर्वा का अध्ययन किया । बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया । शेष सब वृत्तान्त गौतम की तरह है । शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की सनेयना करके यावत् सिद्ध हुए ।

तब (दीक्षित होने के पश्चात्) वे छहों मुनि जिस दिन मुडित होकर आगार से अन्नग धर्म में प्रव्रजित हुए, उसी दिन अरिहत अरिष्टनेमि को वदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

“हे भगवन् ! हम चाहते हैं कि आपकी आज्ञा पाकर हम जीवन पर्यन्त निरन्तर वेले—वेले तप द्वारा आत्मा को भावित (मुद) करते हुए विचरण करें।”

अरिहत अरिष्टनेमि ने कहा—देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हें मुग हो, करो, मुभ कर्म करते में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तब भगवान् के ऐसा कहने पर वे छहों मुनि भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर जीवन भर के लिये वेले-वेले की तपस्या करते हुए यावत् विचरण करने लगे।

छहों अन्नगरों का देवकी के घर में प्रवेश

७—तए णं ते छ अन्नगरा अणया कयाई छटुबखमणपारणयंति पढमाए पोरिसीए सज्भार्यं करंति, जहा गोयमो जाव [बीयाए पोरिसीए भाणं भिययंति, तइयाए पोरिसीए अतुरियम-चवलमसंभंता मुहपोत्तियं पडिलेहंति, पडिलेहिस्ता भायण-वस्थाइं पडिलेहंति, पडिलेहिस्ता भायणाइं पमज्जंति, पमज्जस्ता भायणाइं उग्गाहेति, उग्गाहिस्ता जेणेव अरहा अरिष्टनेमो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता अरहं अरिष्टनेमि वंवंति नमंसंति, वंविता नमंसित्ता एवं वयासी—]

इच्छामो णं भंते ! छटुबखमणस्त पारणए तुभेहिं अरिष्टनेमिणा समाणा तिहि संघाडएहिं वारवईए नयरीए जाव [उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुवाणस्त भिक्खापरियाए] प्रडित्तए।

तए णं ते छ अन्नगरा अरहया अरिष्टनेमिणा अरिष्टनेमिणा समाणा अरहं अरिष्टनेमि वंवंति नमंसंति, वंविता नमंसित्ता अरहो अरिष्टनेमिस्त प्रतियामो सहसंबवणाओ पडिनिबलमति, पडिनिबलमिता तिहि संघाडएहिं अतुरियम जाव [चवलमसंभंता जुगंतरपलीघणाए दिट्ठीए पुरओरियं सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव वारवई नयरी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता वारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुवाणस्त भिक्खापरियं] प्रडंति।

तदनन्तर उन छहों मुनियों ने अन्वया किसी समय, वेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया और गौतम स्वामी के समान (दूसरे प्रहर में ध्यानारूढ हुए, तीसरे प्रहर में कायिक और मानसिक चपलता से रहित हो कर मुगवस्त्रिका, भाजन तथा वस्त्रों की प्रतिलेपना की। तत्पश्चात् वे पात्रों को भोजी में रम कर और भोजी को ग्रहण कर भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी को सेवा में उपस्थित होते हैं, वन्दना-नमस्कार करते हैं, तदनन्तर निवेदन करते हैं) —

भगवन् ! हम वेले की तपस्या के पारणे में आपकी आज्ञा लेकर दो-दो के तीन सघाडों से आरका नगरी में यावत् [माधुप्ति के अनुगार धनी-निधन प्रादि सभी घरों में] भिक्षा हेतु अन्नग करना चाहते हैं।

तब उन छहों मुनियों ने अरिहत अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर प्रभु को वदन नमस्कार किया। वदन नमस्कार कर वे भगवान् अरिष्टनेमि के पास में गह्याअन्न उद्यान में प्रस्थान करते हैं। फिर वे दो-दो के तीन सघाटों में गहन गति में यावत् [चपलता तथा सभ्रान्ति से रहित, चार

देवकी को पुत्र प्राप्ति के लिये और नवरात्रि

६ तबामगर च च तच्छे तपावत् वारवर्षे नयरोए उच्च-नीच जाव' परिणामे
पश्चिमात्ता एवं वयामो —

किन्तु देवानुपिया ! कर्तुम् वामुदेवम इमोमे वारवर्षे नयरोए नवतोपगावियण्णाए जाव
पचचय्य देवतोपभूयाए समणा निग्गया उच्चनीच जाव [महिम्माइ कुत्ताइ परसमुदाणसम भित्ताप-
रियाए] घटमाणा भत्तपाण मो लभति, तस्य ताइ येव कुत्ताइ भत्तपाणाए मुञ्जो-मुञ्जो
घणुपपिसति ?

तए ण ते घणणारा देवइ देवि एव वयामो—नो वत्तु देवानुपिया ! कर्तुम् वामुदेवम इमोमे
वारवर्षे नयरोए जाव' देवतोपभूयाए समणा निग्गया उच्चनीच जाव' घटमाणा भत्तपाण मो लभति,
णो येव णं ताइ ताइ कुत्ताइ होच्ये वि तच्छे वि भत्तपाणाए घणुपपिसति ।

एव एत्तु देवानुपिया ! अहं महिसपुरे नपरे नागस्य गाहावइस्य गुहा गुलताए भारियाए
सत्तया छ भायरो सहोदरा सरिगवा जाव' नस-पुञ्जरसमाणा घरहूयो अरिट्ठनेमिणस त्तिए पम्म
सोच्चा ससारभउधियागो नोया जम्ममरणं मुहा जाव' पवइया । तए ण अहं ज येव दिवस
पवइया तं येव दिवसं अहं अरिट्ठनेमि वरामो नमसामो, इम एयाक्ये अग्निगहं प्रोगिहामो-
इच्छामो णं भंते ! सुवनेहि अग्निगहणाया समाणा जाव' अहं गृह्ये देवानुपिया ।

तए णं अहं अरहया अरिट्ठनेमिणा अग्निगहणाया समाणा जावजोयाए अट्ठंअट्ठं
जाव' विहरामो । त अहं अग्नि अट्ठंअग्निगहणाया समाणा जावजोयाए अट्ठंअट्ठं
जाव [सग्गय करेता, वीयाए पोरिसीए भाणं भिवाइत्ता तइयाए पोरिसीए अरहया अरिट्ठनेमिणा अग्निगहणाया समाणा
तिहि संघाअहि वारवर्षे नयरोए उच्चनीचमहिम्माइ कुत्ताइ परसमुदाणसम भित्तापरियाए]
अट्ठमाणा तव गेहं अग्निगहणाया समाणा जाव' अहं गृह्ये देवानुपिया ! ते येव णं अहं, अहं णं अग्नि । देवइ
देवि एवं ववंति, ववित्ता जामेव विसं पाउअनुया तामेव विसं पइगया ।

इसके बाद मुनियों का तीसरा मघाडा प्राया यावत् उम भी देवकी देवी प्रतिलाभ देती है ।
उनको प्रतिलाभ देकर वह इस प्रकार बोली—“देवानुप्रिये ! क्या कृष्ण वामुदेव की इस वार्ह
योजन लम्बी, नव योजन चौड़ी प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारका नगरी में भ्रमण निर्घ्नो की
उच्च—नीच एव मध्यम कुलों के गृह-नमुदायो मे, निश्चार्थ भ्रमण करने हुए आहार-पानी प्राप्त
नहीं होता ? जिसमें उन्हें आहार-पानी के लिये जिन कुलों में पहले या चुके हैं, उन्हीं कुलों में
पुनः प्राप्ता पडता है ?”

देवकी द्वारा इस प्रकार कहने पर वे मुनि देवकी देवी से इस प्रकार बोले—“देवानुप्रिये !
ऐसी बात तो नहीं है कि कृष्ण वामुदेव की यावत् प्रत्यक्ष स्वर्ग के समान, इस द्वारका नगरी में

१. वयं—३ का सूत्र—७.

२. वयं—३ का सूत्र—७.

३. वयं—३ का सूत्र—६.

४. वयं—३ का सूत्र—६.

५. वयं—१ का सूत्र—६.

६. वयं—३ का सूत्र—६.

७. वयं—३ का सूत्र—६.

सदृकगणप्यवर जाव [तुल-त्रोडुव-मम-वृर-वातिरक्षण ममाति-विद्विभयोति, तनुनयामयकलाव तुल-गौरि-
 गिटटेहि, रदयामयपटा-मुनरतनुनरकरकचगमरवागदोपतिमृति, गो-तुलकक्यामेनगृहि, पदरगो-
 बुवावणहि जाणामनि-रदय-पडियाजा-व-परिगव, गुतावतुग-तोतररतु-र-तुग-गमरगृहि-व-व-व-व-व-व-
 पवरत्तकणोषवेयं पश्मिप जाणप्यवरं तुतामेव उवट्टेव, उवट्टेवत मम एवपमागिण्यं पश्मिपण्य ।
 तएण ते कोडुडिय-गुरिगा एवं तुता मवाणा हृदु जाव इवया, करवव एव ... तहातप्रानाए
 पिणएणं वयम जाव पडिगुमेता विपामेव सतुकरनतुस जाव पश्मिपं जाणप्यवर तुतामेव]
 उवट्टेपेति : जहा देवापरा जाव [तएण मा इवई देवी जाी घनेइरणि श्रावा, कयवी-रुहमा,
 कयकोउव-मगतपावचिदत्ता, इव वरगाउरततउर-मणिमेहृता हार-रविप उविपकडग-गुडुवाग-
 एगावतो-कंठमुत्त-उररधगेवेर-मोनिगुसग-वाणामनि-रदय-भूगणावराहमणे, योणगुपवरवपवरपरि-
 हिया, तुगुत्तमुकुमानउत्तरिउवा, गयोउरगुरभिदुगुववरिपरिगिरिया, वरपरगवविद्या, वराभरण-
 भूतियंगो, कातागदधवपुविद्या, गिरिगमानवेणा, जाव अणमहृप्या-भरणा-रुवगतोरा, यहीहृ पूजग्रीह,
 चिलाइयाहि, पाणादेव-विदेवपरिमहिद्याहि, मदेगणेव-वगतिपवेगाहि, इगिवा-भतिव-परिधयावयाण-
 याहि, कुसलाहि, विणोयाहि, धेडियापरकवातवरातपर-वेरकपुडुग-महृतरगवपरिभिलसा प्रतेउराप्रो
 णिगच्छइ, णिगच्छिता जेणव यहिहिरिया उवट्टाणगाया, जेणव पश्मिप जाणप्यवरं तेणव
 उवागच्छइ, उवागच्छिता जाव पश्मिपं जाणप्यवर बुकडा ।

तए णं सा देवई देवी पश्मियाघो जाणप्यवराओ पश्चोदहृद, पश्चोदहृतिता यहीहृ पूजग्रीहि जाव
 महृतरगवंपरिभिलसा भगवं अरिट्टेनेमि पश्चिविहृणं प्रभिमणेण प्रभिमच्छइ, तं जहा-सचित्तान
 दग्वाणं विसरणयाए, प्रचित्तानं दग्वाणं प्रविमोषणयाए, विणयोनयाए गायसट्टोए, धवत्तुकासे
 अंजलिपग्गहेणं, मणस्स एगतोभायकरणेणं; जेणव भगव अरिट्टेनेमी तेणव उवागच्छइ;
 उवागच्छिता भगवं अरिट्टेनेमि तिक्खुत्तो प्रायाहिण-ययाहिण करेइ, करिता वंडइ णमसइ,
 वंदित्ता णमंसित्ता सुस्सुसमाणी, णमंसमाणी, प्रभिमुहा विणएणं पत्रलिउडा जाव] पञ्जुवातइ ।

तए णं अरहा अरिट्टेनेमी देवई देवि एवं वयातो-‘ते नूनं तव देवई ! इमे ए प्रणगारे
 पासित्ता प्रयमेयाहवे प्रभन्धित्थए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्ये सम्पुष्णे-एवं एतु प्रहं पोतासपुरे
 नयरे प्रइमुत्तेणं जाव’ तं णिगच्छसि, णिगच्छिता जेणव मम अंतियं तेणव हवमागया, ते नूनं
 देवई ! अट्टे समट्टे ?’

‘हता प्रथिए !’

इस प्रकार की बात कहकर उन श्रमणों के लौट जाने के पश्चात् देवकी देवी को इस प्रकार
 का प्राध्यात्मिक, चिन्तित, प्राथित, मनोगत और सकरिपत विचार उत्पन्न हुआ कि “पोलामपुर
 नगर में अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने मुझे बचपन में इस प्रकार कहा था—हैं देवानुप्रिये देवकी !
 तुम अष्ट पुत्रों को जन्म दोगी, जो परस्पर एक दूसरे से पूर्णतः समान [आकार, लंबाई और अवस्था
 वाले, नील कमल, महिष के शृंग के अन्तर्वर्ती भाग, युक्तिका-रग विशेष और श्लमी के समान
 वर्ण वाले, श्रोत्रस से अंकित वक्षवाले, कुमुद के समान कोमल और कुडल के समान धुपराते
 वाले वाले] नलकूबर के समान प्रतीत होंगे । भरतक्षेत्र में दूरी की माता वंसे पुत्रों को जन्म
 नहीं दोगी । पर वह कथन मिथ्या निकला, क्योंकि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि मन्व माताओं

१. प्राप्तुत मूत्र मे ऊपर देवि ।

का निन्दू होना, उसका हरिणैगमेपी देव को धाराधना करना, देवका प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रों को मुलसा के पास पहुंचाना तथा मुलसा के मृतपुत्रों को देवकी देवी के पास पहुंचाना आदि को कथन किया उसी का प्रस्तुत मूत्र में वर्णन दिया गया है ।

'नेमित्तिण्' शब्द का अर्थ होता है नैमित्तिक । भविष्य की बात बनाने वाले ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा जाता है ।

'ण्डू'—शब्द का अर्थ है—मृत-प्रसविनी । जगके वरुने मृत पंदा हों, उसे निन्दू कहते हैं । मृत बालक दो तरह के होते हैं—एक तो गर्भ में ही मरे हुए पंदा होने वाले, दूसरे पंदा होने के बाद मर जाने वाले । प्रस्तुत प्रकरण में निन्दू से प्रथम अर्थ का ग्रहण ही अभोष्ट प्रतीत होता है ।

हरिणैगमेपी—शब्द का अर्थ करते हुए कल्पमूत्र (प्रदोषिका टीका के गर्भ परिवर्तन-प्रकरण) में लिखा है—'हरे इन्द्रस्य नैगमम् आदेनमिच्छन्तीति हरिनैगमेपी, केचित् हरेरिन्द्रस्य संवधी नैगमेपी, नाम देव इति'—अर्थात् हरिनैगमेपी शब्द के दो अर्थ हैं—१. हरि-इन्द्र के नैगम—आदेश को इच्छा करने वाला देव तथा २. हरि-इन्द्र का नैगमेपी अर्थात् संवधी एक देव । हरिनैगमेपी सौधमं देवलोक के स्वामी महाराज शकेन्द्र का सेनापति देव है । इन्द्र की आज्ञा मिलने पर भगवान् महावीर के गर्भ का परिवर्तन इसी देव ने किया था ।

'उल्ल-पड-साडया' का अर्थ है—जिसने आर्द्र (भीगा हुआ) पट और साटिका धारण कर रखी है । पट ऊपर ओढ़ने के वस्त्र का नाम है । साटिका शब्द से नीचे पहनने की धोती या साडो का बोध होता है ।

'आहारेइ वा, नीहारेइ वा, वरइ वा' का अर्थ है—आहार करती थी—भोजन साती थी । निहारेइ अर्थात् शोचादि विद्याओं में निवृत्त होती थी । वरइ-शब्द वृ धातु से बनता है जिसका अर्थ है—विचार करना, चुनना, सगाई करना, याचना करना, आच्छादन करना, सेवा करना । प्रस्तुत में वृ धातु विचार करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई प्रतीत होती है । तब 'वरइ' का अर्थ होगा विचार करती थी, अन्य कार्यों के सम्बन्ध में चिन्तन करती थी ।

"भक्ति-बहुमाण-मुसूसाए" का अर्थ है—भक्ति-बहुमान तथा शुश्रूषा के द्वारा । भक्ति शब्द अनुराग, बहुमान शब्द अत्यधिक सत्कार तथा शुश्रूषा शब्द सेवा का परिचायक है । इन पदों द्वारा मूत्रकार ने हरिणैगमेपी देव को धाराधित—मिद्ध या प्रसन्न करने के तीन साधनों का निर्देश किया है । देव को सिद्ध करने के लिये उक्त तीन बातों की अपेक्षा हुआ करती है । देव को सिद्ध करने के लिये सर्वप्रथम साधक के हृदय में देव के प्रति अनुराग होना चाहिए, तदनन्तर साधक के हृदय में देव के लिये अत्यधिक सत्कार-सम्मान की भावना होनी चाहिये । देव को सिद्ध करने के लिये तीसरा साधन देव की सेवा है ।

मुसूसा ने हरिणैगमेपी देव की धाराधना की, उसकी पूजा की, परिणाम स्वरूप उसने अपने अभोष्ट कार्य सिद्ध कर लिया । इसमें भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि देवता के प्रति की जाने वाली धाराधना साधक की कामना पूर्ण करने में महायुक्त बन सकती है । देव अपने भक्त की रक्षा करने तथा उन पर अनुग्रह करने में मगन होंता है ।

जोग पुत्रादि को उपलब्ध करने के लिये देव-पूजन करते हैं और पूर्वोपाजित किसी पुण्य कर्म

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि से छहों मुनियों का वृत्तान्त मुनने पर “ये छहों मेरे ही पुत्र हैं” इस प्रकार की प्रतीति हो जाने पर वह देवकी देवी छहों मुनियों के दर्शन करती है और पुनः पुनः उन्हें देखकर हृषित होती है, ऐसी स्थिति में उसका छिपा हुआ वाल्मल्य उजागर हुआ, और स्तन-दुग्ध द्वारा प्रकट हो गया। तदनन्तर अपनी स्थिति में समाहित वह अपने भवन में वापस लौटी और विशेष विचारधारा में डूब गई। अग्रिम सूत्र में सूत्रकार उसकी विचारधारा और परिणामधाराओं का दिग्दर्शन कराते हैं।

देवकी की पुत्रामिताया

१३—तए णं तीसे देवईए देवोए अयं अज्भक्तियए चितिए पहियए मणोगए संकपे सपुष्णे— एवं सल्लु अह सरिसए जाव नलकुब्बर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि वालत्तणए समणुंभूए। एस वि य णं कण्हे वामुदेवे द्दण्हं-द्दण्हं मात्ताणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ। तं षण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, पुण्णाओ णं ताम्रो अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताम्रो अम्मयाओ, कयत्तवत्तणाओ णं ताम्रो अम्मयाओ, जासि मण्णे नियग-कुच्चि-संभूयाइं यणदुद्ध-सुद्धयाइं महर-समुत्तायायाइं मम्मण-पजंपियाइं यण-मूला कवलवेशभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमल-कमलोवमेहिं गिण्हिऊण उच्छमे णिवेसियाइं वेति समुल्लावए सुमहरे पुणो-पुणो मंजुत्तपमणिए। अहं णं अथण्णा अणुण्णा अकयपुण्णा अकयत्तवत्तणा एत्तो एकत्तरमवि ण पत्ता, ओह्य जाव [मगतकप्पा करपत्तपहस्यमहो षट्ठज्जाणोवगया] भियायइ।

उस समय देवकी देवी को इस प्रकार का विचार, चिन्तन और अभिलाषापूर्ण मानसिक सकल उलान हुआ कि अहो ! मैंने पूर्णतः समान आकृति वाले यावत् नलकुब्बर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया पर मैंने एक की भी वाल्यश्रीडा का मानन्दानुभव नहीं किया। यह कृष्ण वामुदेव भी द्दण्ह-द्दण्ह माग के अनन्तर चरण-चन्दन के लिये मेरे पास आता है, अतः मैं मानती हूँ कि वे माताए धन्य हैं, त्रिनरी अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए, स्तन-पान के लोभी बालक, मधुर आलाप करते हुए, तुलसीवाली बोलों में मग्न बोलते हुए जिनके स्तनमूल कक्षा-भाग में अभिसरण करते हैं, एवं फिर उन मुग्ध बालकों को जो माताए कमल के समान अपने कोमल हाथों द्वारा पकड़ कर गोद में धिटाती हैं और अपने बालकों में मधुर-मत्स्य शब्दों में बार बार बाने करती हैं। मैं निरिच्छरूपेण अधन्य और पुष्पहीन हूँ क्योंकि मैंने दान में एक पुत्र की भी बालश्रीडा नहीं देगी। इस प्रकार देवकी निद्रान में दर्शनी पर सुख रगकर (गोक-मुदा में) ध्यान करने लगी।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में मात-भ्रातृ पुत्रों को माना बनने पर भी उनकी बाल्यश्रीडा घाति में खिच देवकी देवी की निद्रा परस्था-विशेष में उठने वाले सकल्प-विकल्पों का हृदय-द्रावक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

दुग्ध द्वारा विचारधारा का उदाहरण

१३—इयं य णं कण्हे वामुदेवे वहाए जाव [कयत्तकप्पे कयकोउय-मंगल-वायविद्धते सध्धाभंकार] विभूमिए देवईए देवोए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं ते कण्हे वामुदेवे देवई वेति पामइ, पामिता देवईए देवोए पायागएण करेइ, करित्ता देवई वेति एव वयात्तो—

अथण्णा अं अणो ! तुए मयं पामिता द्दट्ठनुद्धा जाव [चित्तमापदिया पीइमणा परमसोम-

जइयाए छेपाए विव्वाए वेवगतीए जेणामेव वारवईए नयरे पोसहसालाए कण्हे वासुदेवे तेण उवागच्छइ, उवागच्छता अंतरिषलपडिवन्ने दसद्ववघ्नाइं सखिलिणिघाइं पवरवत्थाइं परिहिए-
 वामुदेवें एवं वयासी—

“अहं णं देवाणुप्पिया ! हरिणेगमेसी वेवे महिड्डिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्टम पणिण्हिता ण ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया ! अहं इहं हव्वमागए । संदिं णं देवाणुप्पिया ! किं करेमि ? किं दत्तामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हिय-इच्छितं ।”

तए णं से कण्हे वामुदेवे तं हरिणेगमेसि देवं अंतिलिषलपडिवन्नं पासइ, पासित्ता हट्ठु पोसहं पारेइ, पारित्ता करयत्तपरिगहियं] अजलि कट्टु एवं वयासी—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोवरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं !

उगी समय यहा श्रीकृष्ण वामुदेव स्नान कर, यतिकर्म कर, कौतुक-भगल और प्रायश्चित्त कर, वस्त्रालकारों में विभूषित होकर देवकी माता के चरण-वदन के लिये शीघ्रतापूर्वक आये व कृष्ण वामुदेव देवकी माता के दर्शन करते हैं, दर्शन कर देवकी के चरणों में वदन करते हैं चरणवन्दन कर देवकी देवी में इस प्रकार पूछने लगे—

“हे माता ! पहले तो मैं जब-जब आपके चरण-वन्दन के लिये आता था, तब-तब मुझे दर्शन ही दृष्ट नुष्ट यावत् प्रानदित हो जाती थी, पर माँ ! आज आप उदास, चिन्तित यावत् प्रानंध्यान में निमग्न-सी क्यों दिख रही हो ?”

कृष्ण द्वारा इस प्रकार का प्रश्न किये जाने पर देवकी देवी कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार बहने लगी—हे पुत्र ! वस्तुतः वान यह है कि मैंने ममान आकृति यावत् समान रूप वाले सात पुत्रों को जन्म दिया । पर मैंने उनमें से किसी एक के भी बाल्यकाल अथवा बाल-लीला का सुग नहीं भोगा । पुत्र ! तुम भी छह छह महीनों के अन्दर में मेरे पाग चरण-वदन के लिये आते हो । अतः मैंने ऐसा माध नहीं है कि वे मानाए धन्य है, पुण्यशालिनी हैं जो अपनी मन्तान को स्तनपान करती हैं, यावत् उनके साथ मधुर आलाप-मलाप करती हैं, और उनकी बालश्रीं का प्रानन्द का अनुभव करती हैं । मैं प्रसन्न है महान-पुण्य है । यही सब गोचरी हुई मैं उदासीन होकर इस प्रकार प्रानंध्यान कर रही हूँ ।

माता की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण वामुदेव देवकी महारानी में इस प्रकार बोले—
 “माताजी ! आप उदास प्रथमा चिन्तित होकर प्रानंध्यान मन करो । मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा कि मैंने मेरा एक महीनर छोड़ा भाई उत्पन्न हो ।” इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने देवकी माता को दृष्ट, शान्त, विर, मनोज बन्नी द्वारा धरे बताया, आरवन्त किया । इस प्रकार अपनी माता को आरवन्त कर श्रीकृष्ण अपनी माता के प्रानाद में निकले, निरुत्तर जहा पीयथाना थी वहाँ प्रानाद में आकर विर प्रकार प्रानधुमार ने अष्टमभक्त तप (नेता) स्वीकार करके प्राने मित्र देव की आराधना की थी, उनी प्रकार श्रीकृष्ण वामुदेव ने भी की । विनयना यह कि इन्होंने हरिणगवेरी देव की आराधना की । आराधना में अष्टम भक्त तप प्रकृत किया, प्रकृत करके पीयथाना में पीयथुत्त होकर, इष्टमभक्त तप स्वीकार करके, अति-सुख प्रानि के अष्टकारों का त्याग करके, माता, अष्टमभक्त तप करके, अष्टमभक्त तप प्रानि प्रयां गमन आरध-ममाराध को छोड़कर

तुमं देवानुष्पिपे ! णव्वं मासाणं बहूपडिपुण्णाणं धट्टठमाणराहंविद्याणं विद्वक्कंताणं म्महं कुलकेजं, कुलदीवं, कुलपच्चयं, कुलवड्डेसयं, कुलतिलगं, कुलकित्ताकरं, कुलणविकरं, कुलजसकरं, कुलाधारं, कुलापायं, कुलविबद्धणकरं, सुकुमालपाणि-पायं, म्महीणपडिपुण्णपविद्वियसरीरं, जाव ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं, सुह्वं, देवकुमारसमप्यभं दारगं पयाहिति ।

से वि ष णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोश्वणगमणुपत्ते सुरे वीरे विवक्कंते विविथण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ । तं उराले णं तुमे जाव सुमिणे विट्ठे, धारोग-तुट्ठि, जाव भंगलकारए णं तुमे देवी ! सुविणे विट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो मणुयूहेइ ।

देवई देवी वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठं करयलं जाव एवं ययासी—“एवमेयं देवानुष्पिया ! तहमेयं देवानुष्पिया ! अविहमेयं देवानुष्पिया ! असंविद्धमेयं देवानुष्पिया ! इच्छियमेयं देवानुष्पिया ! पडिच्छियमेयं देवानुष्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवानुष्पिया ! से जहेयं तुज्जे वयह” त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छत्ता यसु देवेणं रण्णा अम्भणुण्णाया समाणी णाणागमि-रयणमत्तिचित्तामो भद्दासणाओ अम्भट्ठेइ, अम्भट्ठित्ता प्रतुरियम-चयल जाव गईए जेणेव सए सपणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छत्ता सपणिज्जसि णिसीयइ, णिसीइत्ता एवं ययासी—“मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे म्मणोहि पावसु मिणेहि पडिहम्मिस्सइ” त्ति कट्टु देव-गुरुजणसंबद्धाहि पसत्थाहि मगल्लाहि धम्मिमाहि कहाहि सुविणजागरयं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

तए णं वसुदेवे राया पच्चूसकालसमयंसि कोट्टु विद्यपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एय ययासी—
“खिप्पामेव
सद्दावेह ।

पडिणियसि
तेणेव उवागच्छत्ता ते सुविणलक्खणपाठए सद्दावेत्ति । तए णं ते सुविणलक्खणपाठगा वसुदेवस्स रण्णो कोट्टु विद्यपुरिसेहि सद्दाविया समाणा हट्टतुट्ठं ण्हाया कयं जाव सरीरा सिद्धयग-हरियालिय-कयमंगलमुट्ठाणा सएहि सएहि गेहेहितो णिगच्छंति, णिगच्छत्ता जेणेव कण्हस्स रण्णो भयणवरयड्डेसए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता करयल यसुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेत्ति । तए णं ते सुविणलक्खणपाठगा वसुदेवे रण्णा वदिय-पूइअ-सक्कारिम-सम्मणिमा समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति । तए णं से वसुदेवे राया देवई देवि जवणियंतरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुक्क-कल पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाठए एवं ययासी—“एवं खलुदेवानुष्पिया ! देवई देवी अज्ज तत्ति तारित्तंसंति धासधरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबद्धा, तण्णं देवानुष्पिया ! एयस्स धारालस्स जाव के मण्णे कल्लाणे कलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए णं सुविणलक्खणपाठगा वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ठं तं सुविणं ओगिण्हंति, ओगिण्हत्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोगमणु करंति, तस्सं अण्णमण्णेणं सद्धि संचालंति, संचालित्ता तस्स सुविणस्स लद्धा गहियट्ठा पुच्छिमट्ठा विणिच्छियट्ठा अमियट्ठा वसुदेवस्स रण्णो पुरमो सुविणसत्थाइ उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं ययासि—“एवं खलु देवानुष्पिया ! म्महं सुविणसत्थसि बायातीस सुविणा, तीसं महासुविणा, यावत्तरि सव्वसुविणा विट्ठा । तस्य ण देवानुष्पिया ! तिरयपरमायोरो वा चक्कवट्ठिमायोरो वा तिरयपरंसि वा चक्कवट्ठित्ति

तए ण से वसुदेवे राया अट्टारससेणोप्पसेणोभो सदावेद, सदावित्ता एवं वयासो — "गच्छं तुम्हे देवान्पिया । वारवईए नयरोए अग्निभतरवाहिरिए उस्सुवक उवकरं अमइव्वेसं अंदवि कुड्डिम अघरिम अधारणिज्ज अणुद्धयमुद्धं अमितापमत्तदामं गणियावरणाइइज्जकत्तिय अणं तालायराणुचरितं पमुद्दयपक्कोलियाभिरामं जहारिहं ठिइयइयं दसदिवसियं करेह, करि एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

ते वि करेण्ति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणत्ति ।

तए णं से वसुदेवे राया वाहिरियाए उयट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरस्याभिमुहे सप्रिस्स सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएर्ह बाएहि भोगेहि दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एवं च णं विहरइ ।

तए णं तस्स अम्मापियरो पदमे दिवसे जातकम्मं करेण्ति, करित्ता वित्तियदिवसे जाणरि करेण्ति, करित्ता तत्तिय दिवसे चंदमूरवंसणियं करेण्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते अस्सुइजातकम्मकर संपत्ते वारसाहदिवसे विपुलं अरसणं पाणं खाइमं साइमं उववखड्ढावेण्ति, उववखड्ढावित्ता मित्त-णाइ गियग-सयण-संबंधि-परिजणं बलं च बह्वे गणणायग-दड्ढायाग जाय अमत्तेइ ।

तथो पच्छा ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया महइ महालयत्ति भोगमंडवंसि तं विपुलं अरसणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ० गणणायग जाव सत्ति आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुजेमाणा एवं च णं विहरइ ।

जिनियभुत्तारागया वि य णं समाणा आयंता चोवखा परमसुइभया तं मित्तनाइनियगसयण-संबंधिपरिजण० गणणायग० विपुलेणं पुणफगंधमत्तलालंकारेण सव्कारेण्ति, संमाणंति, सव्कारित्ता सम्माणित्ता एव वयासो—] "जम्हा णं अम्हं इमे वारगे गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एयस्स वारगस्स नामधेज्जे गयस्स कुमाले २ । तए णं तस्स वारगस्स अम्मापियरे नामं करेण्ति गयस्स कुमालोत्ति सेसं जहा मेहे जाव' अलं भोगसमत्थे जाए यावि होस्था ।

तदनन्तर वह देवकी देवी अपने आवासगृह में शय्या पर सोई हुई थी। वह वासगृह (शयनकक्ष) भीतर से चित्रित था, बाहर से श्वेत और पिसकर चिकना बनाया हुआ था। उसका उपरिभाग विविध चित्रों से युक्त था और नीचे का भाग सुशोभित था। मणियों और रत्नों के प्रकाश में उमका अंधकार नष्ट हो गया था। वह एकदम समतल सुविभक्त भाग वाला, पचवर्ण के सरस और सुवासित पुष्प-पुजों के उपचार से युक्त था। उत्तम-कालागुरु, कुन्दरुक और तुल्यक (शिलारस) की धूप से चारा और सुगन्धित, सुगन्धी पदार्थों से सुवासित एवं सुगन्धित द्रव्य की गुटिका के समान था। उसमें जो गव्या थी वह तकिया सहित, सिरहाने और पायते दोनों और तकियायुक्त थी। दोनों और रत्न से फिगल जाने) के समान कोमल, धोमिक—रेगमी दुकूलपट से आच्छादित, रजस्त्राण (उड़ती हुई धूल को रोकने वाले वस्त्र) से ढँकी हुई, रक्तागुक (मच्छरदानी) सहित, मुरम्य धाजिनक (एक प्रकार का चमड़े का कोमल वस्त्र) रई, बूर, नवनीत, अक्रंतूल (प्राक की रई) के समान कोमल स्पर्श वाली, सुगन्धित उत्तम पुष्प, चूर्ण और अन्य शयनोपचार से युक्त थी। ऐसी शय्या पर सोई हुई देवकी देवी ने अर्द्ध निद्रित अवस्था में अर्द्ध रात्रि के समय उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलकारक और गोभन महास्वप्न देखा और जागृत हुई ।

अर्थात् हिंगुल धातु, तरुण सूर्य, तोते की चोंच और दीपगिखा के समान तेजोलेख्या का वर्ण होता है। प्रमत्त मूत्र में तरुण मूत्र रक्त अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा तेजोलेख्या के वर्ण सम्बन्धी अर्थ की सगति नहीं हो सकती।

जपामुमन, रक्तबन्धु-जीवक, लाक्षारस, सरस पारिजातक और तरुण दिवाकर समान जिसकी प्रभा हो, कान्ति हो, चमक हो, वर्ण हो, उसको 'जपामुमन—रक्तबन्धुजीवक-लाक्षारस-सरस पारिजातक-तरुण दिवाकर-समप्रभ' कहते हैं।

गज-तानुय-समाण—अर्थात्—गज हाथी को कहते हैं। तालु अर्थात् ऊपर के दातों और कोंबे के बीच का गड्ढा। गज के तालु को गजतालु कहते हैं। गज के तालु के समान जिसका तालु हो वह 'गज-तानु-समाण' कहलाता है। वैसे सभी प्राणियों का तालु रक्त और कोमल होता है पर हाथी का तालु विद्योप रूप से रक्त और कोमल माना गया है।

राजकुमार गजमुकुमार के युवक हो जाने पर उसके विवाह आदि के सम्बन्ध में क्या हुआ ? इस जिज्ञाना के सम्बन्ध में सूत्रकार कहते हैं—

सोमित ब्राह्मण

१६—तस्य णं वारवईए नयरीए सोमिते नाम माहणे परिवसइ—अइडे। रिउध्वेय जाव [जजुध्वेय-सामधेय-ग्रहध्वणयेय-इतिहासपंचमाणं, निषंठुछट्टाणं चउण्हं वेदाणं संगोवंगणं-सरहस्ताणं सारए, वारए, धारए, सउंगवी, सट्टितंतविसारए, संराणे, सिक्काकल्पे, वागरणे, छडे, निहत्ते, जोइसामयणे, धम्मंमु य बहूमु बम्हणएणमु परिवायएणु नयेमु] सुपरिणिट्टिए यावि होत्था। तस्स सोमित-माहणस्स सोमितरी नामं माहणी होत्था। सूमाल०। तस्स णं सोमितस्स धया सोमितरीए माहणीए प्रत्त्या सोमा नामं दारिया होत्था। सोमाला जाव^१ मुक्खा। इवेण जाव (जोध्वणेण) सावणेणं उच्चिट्ठा उच्चिट्ठसरीरा यावि होत्था। तए णं सा सोमा दारिया अणया कयाइ प्हाया जाव^२ विभूसिया, यइहि सुअर्जाह जाव^३ परिविलत्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणव रायमाणे तेणव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता रायमाणंति कणपतिइसएणं कीलमाणो चिट्ठइ।

उम इतरा नगरो में सोमित नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समृद्ध था और ऋषिदे, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारों वेदों, पाचवें इतिहास, तथा छठे निषण्ड, इन सबके ज्ञान-पात्र गृहीत रहस्य का ज्ञान था। वह इनका 'मारक' (स्मारक) अर्थात् इनको पढ़ानेवाला था, धन: इनका प्रभवंक था अथवा जो कोई वेदादि को भूल जाता था उसको पुन: याद कराना था, धन: इह स्मारक था। वह वारक था अर्थात् जो कोई दूसरे लोग वेदादि का प्रमुद्ध उच्चारण करने थे, उनकी रीतिना था, इनलिखे वह 'वारक' था। वह 'धारक' वा अर्थात् पठे हुए वेदादि को नहीं भूलनेवाला था अर्थात् उनको अक्षय्य तरह धारण करनेवाला था। वह वेदादि का 'पाठक'—पाठक था। छठे अंग का ज्ञान था। पट्टिनन्त्र (कालिदास नास्त्र) में विदारद (पडि) था। वह सुदिग्गाम्भ, सिद्धान्ताम्भ, प्राचार्याम्भ, व्याकरण्याम्भ, छन्दनास्त्र, व्युत्पत्त्याम्भ, ज्योतिष्याम्भ, इन सब नामों में तथा दूसरे वदने में। श्राव्यन और पाश्चात्यक सम्बन्धी नास्त्रों

१. यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का नवमसूत्र।
 २. इतिहास, तान्त्रिक बर्ण का नवमसूत्र।
 ३. इतिहास, बर्ण ३ प १, सूत्र २।

भगवान् अरिष्टनेमि की उपासना

१८—तए णं से कण्हे वासुदेवे वारवईए नगरीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छिता जेणे सहसंबवणे उज्जाणे जाव [जेणेव भरहा अरिट्टनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता भरहइ अरिट्टणेमिस्स छत्तात्तिछत्तं पडागातिपडागं विज्जाहरघारणे जंमए य देवे घोवयमाणे उप्पयमा पासइ, पासिता भरहं अरिट्टनेमि पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ । तंजहा—(१) सचित्ता दब्बाणं विउसरणयाए (२) अचित्ताणं दब्बाणं अविउसरणयाए (३) एगसाडियं उत्तरासंगकरणे (४) चक्खुप्पासे अंजलिपगहेणं (५) मणसो एगत्तीकरणेणं । जेणामेव भरहा अरिट्टनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता भरहं अरिट्टनेमि तिक्खुत्तो प्रायाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्तं वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता भरहघो अरिट्टणेमिस्स णच्चासन्ने णाइवूरे मुत्समाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं] पज्जुवासइ ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य भाग से होते हुए निकलें, [निकलकर जहा सहस्राश्रवण उद्यान था और भगवान् अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये । आकर अरिहत् अरिष्टनेमि स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओं पर पताका आदि अतिशयों को देखा तथा विद्याधरो, चारण मुनियो और जू भक्त देवों को नीचे उतरते हुए एक ऊपर उठते हुए देखा । देमकर पाच प्रकार अभिगम करके अरिहत् अरिष्टनेमि स्वामी के मन्मुख चले । वे पाच अभिगम इस प्रकार है—(१) पुष्प-पान आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग, (२) वस्त्र-आभूषण आदि अचित्त द्रव्यों का अत्याग, (३) एक गाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासंग, (४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोडना और (५) मन को एकाग्र करना । ये अभिग्रह करके जहा अहत् भगवान् अरिष्टनेमि थे वहा आये । आकर अरिहत् अरिष्टनेमि को दक्षिण दिशा से आरम्भ करके (तीन बार) प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके भगवान् को स्तुतिरूप वन्दन किया और नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके भगवान् के अत्यन्त समीप नहीं और अत्यन्त दूर भी नहीं, ऐसे समुचित स्थान पर बैठकर, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करते हुए, नमस्कार करते हुए, दोनों हाथ जोडे, सन्मुख रहकर] उपासना करने लगे ।

धर्मदेशना और विरक्ति

१९—तए णं भरहा अरिट्टणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयमुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मं कहेइ, कण्हे पडिगए । तए णं से गयमुकुमाले भरहघो अरिट्टनेमिस्स अतिपं धम्मं सोच्चा, [जं नवरं, अम्मपियरं अपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्जं जाव वड्डियकुले] । [निसम्म हट्टुवुडे भरहं अरिट्टनेमि तिक्खुत्तो प्रायाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सहहामि णं भंते ! निग्गयं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गयं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गयं पावयणं,

१. यहाँ मूत्रवार ने गयमुकुमाल के जीवन की "जहा मेहो" यह कहकर मेघकुमार के समान बताकर आये "महेलियावज्ज" पाठ दिया है, जिसका अर्थ होता है महिलारहित या प्रविवाहित । जाता० में मेघकुमार की विवाहित स्त्रिय कहा है । अतः यहाँ प्रस्तुत शब्द से दोनों की स्थिति की विभिन्नता दर्शायी है । यहाँ 'जाव' पाठ की पूर्ति हेतु इम विभिन्नता को धृष्टि में रख कर उपयुक्त पूर्ति-पाठों को नये पैरयाक से शुरू किया गया है ।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापिऊँहि एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मो ! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह—“तुमं ति णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे येज्जे वेत्तासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगममाणे रयणे रयणमूए जीविय-उम्मासिए हियय-णांदि करे उंवरपुप्फ व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? तो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पधोगं सहित्तए । तं भुंजाहि ताव जाया ! यिपुले माणुसए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो । तत्रो पच्छा अम्हेहि कालगएँहि परिणययए वड्ढिय-कुलवंसंतंतुकज्जम्मि निराव-यक्खे अरहस्रो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मूँडे भवित्ता अगारास्रो अणगारियं पव्वइस्सति ।” एवं खलु अम्मयास्रो ! माणुसए भवे अघुवे अणितिए असासए वसणसस्रोवद्दयाभिन्ने विज्जुलयाचंचले अणित्थे जलवुब्बयसमाणे कुसगजलबिडुसत्रिभे संभ्ररागसरिसे मुविणवंसणोयमे सडण-पडण-विडणं सण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अयस्स विप्पजहणित्थे । से के णं जाणइ अम्मयास्रो । के पुंथिव गमणाए के पच्छा गमणाए ? त इच्छामि णं अम्मयास्रो ! तुब्भेहि अम्मणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मूँडे भवित्ता णं अगारास्रो अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुवह्णु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणिमोत्तिय-उल्ल-सिल-प्पवात-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमास्रो कुलवंसास्रो पगामं वाउं पगामं भोत्तं पगामं परिभाएउं । तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुसगं इडुत्तक्कारसमुवयं । तओ पच्छा अणुसूय-कल्लाने अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मूँडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सति ।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरं एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मयास्रो ! जं णं तुब्भे ममं एव वयह—“इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए जाव पव्वइस्सति ।” एवं खलु अम्मयास्रो ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अणिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए वाइयसाहिए मच्च-साहिए, अणिसामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चसामण्णे सडण-पडण-विडणं सणधम्मे पच्छा पुरं च णं अयस्स विप्पजहणित्थे । से के णं जाणइ अम्मयास्रो ! किं पुंथिव गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयास्रो ! तुब्भेहि अम्मणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मूँडे भवित्ता अगारास्रो अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएति गयसुकुमालं कुमारं अहाँहि विसयाणुलोमाँहि आघवणाहि य पणवणाहि य सणवणाहि य विणवणाहि य आघवित्तए वा पणवित्तए वा सणवित्तए वा विणवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि संजमभउव्वेयकारियाँहि पणवणाहि पणवेमाणा एवं वयासी—

एस णं जाया ! निगंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुखं सत्तगत्तणे सिट्ठिमगे मृत्तिमगे निग्गानमगे निव्वानमगे सव्वदुक्खपहोणमगे, अहीव एगंतविट्ठोए, खरो इव एगंतघाराए, सोहमया इव जवा चावेयथा, वालुयाकवले इव निरस्ताए, गंगा इव महानई पडित्तोय-गमणाए, महासमुदो इव भूपाँहि दुत्तरे, तिक्खं कमियच्चं, गधअं लंबेयच्चं, असिधारव्वयं चरियच्चं ।

नो खलु रूपइ जाया ! समणां निगंथाणं आहाकम्मिए वा उहेँसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा बुभिसत्तभत्ते वा कंठारभत्ते वा बहुत्तियाभत्ते वा गिल्लणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंबभोयणे वा कल्लभोयणे वा थोयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा ।

है कि—हे पुत्र ! यह दादा, पडदादा और पिता के पडदादा से माया हुआ यान् उताम द्रव्य है इसे भोगो और फिर अनुभूतकल्याण होकर दीक्षा ले लेना । परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य सुवर्ण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है—इसे अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा मकत है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बंटवारा करा सकते हैं और मृत्यु माने पर यह अपना नहीं रहता है । इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिये समान है, अर्थात् द्रव्य उगके स्वामी का है, उसी प्रकार अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिये भी सामान्य है । यह सड़ने पड़ने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है । (मरण) के पश्चात् या पहले अथवा त्याग करने योग्य है । हे माता-पिता ! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा ? अतएव मैं यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ ।

तत्पश्चात् गजमुकुमाल के माता-पिता जब गजमुकुमाल को विषयो के अनुकूल आस्थापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, सज्ञापना (सवोधन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली समझाने बुझाने, सवोधन करने और अनुनय करने में समर्थ न हुए तब प्रतिकूल तथा समय के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य (सत्पुरुषों के लिये हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक-सर्वज्ञ कथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणों से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, समुद्र अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्तन अर्थात् माया आदि शल्यों का नाश करने वाला है, मिद्धि का मार्ग है, मुनित का मार्ग (पार्ष्णों के नाश का उपाय) है, निर्याण का (मिद्धि क्षेत्र का) मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है और समस्त दुःखों को पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है । जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने में निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन में दृष्टि निश्चल रखनी पड़ती है । यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इस में दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओं का अभाव है । इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जो चवाना है । यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषयमुख में रहित है । इसका पालन करना गया नामक महानदी के पूर में सामने तिरने के समान कठिन है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है । महाशिला जैसी भारी वस्तुओं को गले में बाँधने के समान है । तलवार की धार पर चलने के समान है ।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों को आधाकर्मी, औद्देशिक श्रौतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोड़ा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुनः साधु के लिए मोदक रूप में तैयार किया हुआ, दुर्भिक्ष भक्त (साधु के लिये दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन) कान्तार भक्त (साधु के निमित्त अरण्य में बनाया हुआ आहार), वर्दलिका भक्त (वर्षों के समय उपाध्यय में आकर बनाया भोजन) ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से देव वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है ।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कद का भोजन, फल का भोजन, बीजों का भोजन अथवा हरित का भोजन करना भी नहीं कल्पता है । इसके अनिश्चित हे पुत्र ! तू सुप्त भोगने योग्य है, दुःख सहने योग्य नहीं है । तू नीत महने में ममर्थ नहीं है, उष्ण सहने में ममर्थ नहीं है । भूख नहीं सह सकता,

तएवं गयसुकुमारो कुमारं इत्थं वदन्नेव अस्मापिपरो न पश्यन्मयागे श्रीगणेशं गीर्वाणम् ।
 जाव — [तएवं मे गयसुकुमारस्य विद्या कोट् विद्यपुत्रिणे गदावेत् । गदावित्ता एव ययासो — [त्विष्यामेव भो
 देवाणस्पिया ! गयसुकुमारस्य कुमारस्य मन्त्रस्य, मन्त्रस्य, मन्त्रस्य त्रिभुव राधाभोगेण उच्यते ।
 तएवं ते कोट् विद्यपुत्रिणा तदेव जाव पश्यन्विगतः । तएवं तं गयसुकुमारं कुमारं अस्मापिपरो
 सोहासणवरणि पुरस्थाभिमुखं निमोदावेति जरा रावणभोगेण इत्ये, जाव यदुत्तराण मोर्वाणयाण
 वत्तमाणं गिरिद्वारे जाव मन्त्रा रवेण मन्त्रा मन्त्रा रावाभोगेण मन्त्रिणवर्षति ।

महया महया राधाभोगेण यमिनिवित्ता करयन् जाव तएवं विजएण यज्ञाविति,
 जएणं विजएण यज्ञावित्ता एव वरागो — भग जाया । किं वेतो, किं पयच्छामो, तिन्ना वा ते प्रदो ?

तएवं ते गयसुकुमारो कुमारं अस्मापिपरो एव ययासो — इच्छामि न अस्म-याभो कुत्सया-
 यणाभो रयहरणं च पडिगहं च धागित्ता कामवत् च गदावित् । निजपमणं जहा महत्तरासः ।

तएवं गयसुकुमारस्य कुमारस्य अस्मापिपरो कोट् विद्यपुत्रिणे गदावेत्, गदावित्ता एव
 ययासो — [त्विष्यामेव भो देवाणस्पिया ! गिरिधराभो तिन्नि सयगद्गताई गदाव गोत्तं गयसुकुमारो
 रयहरणं पडिगहं च उच्यते, सयगहस्तेण कासवयं सहावेत् । तएवं ते कोट् विद्यपुत्रिणा गयसुकुमारस्य
 कुमारस्य पिउणा एव युत्ता मयाणा हृदनुट्ट करयत्त जाव पडिसुनेत्ता त्विष्यामेव गिरिधराभो तिन्नि
 सयसहस्साई, तहेव जाव कासवयं सहावेत् । तएवं ते कासवए गय-कुमारस्य पिउणा कोट् विद्य-
 पुत्रिणेहि सहाविए समाजे हृदनुट्टे ष्टाए कयवलिङ्गमे जाव उरागच्छद, उयागच्छिता करयत्त
 गयसुकुमारस्य कुमारस्य पिपरो जएणं विजएण यज्ञावेद, यज्ञावित्ता एव ययासो — सवितं तु न
 देवाणस्पिया ! जं मए करणिउजं ? तएवं ते गय-सुकुमारस्य पिपरा तं कासवयं एव ययासो — तुमं
 देवाणस्पिया ! गयसुकुमारस्य कुमारस्य परेणं जसेणं चउरंगुलवउजे निवत्तमणवाभोगे प्रागकेते
 कप्येहि । तएवं ते कासवे एवं युत्तं समाजे हृदनुट्ट करयत्त जाव एवं सामो । तह्नि घाणाए विणएणं
 वयणं पडिसुनेद, पडिसुनिता सुरनिना गंधोदएणं हरयवाए पवत्तालेद, पवत्तालित्ता सुद्धाए अट्ट-
 पडलाए पोत्तीए मूहं बंधद, मूहं बंधित्ता गयसुकुमारस्य कुमारस्य परेण जसेणं चउरंगुलवउजे
 निवत्तमणवाभोगे अगकेते कप्येद ।

तएवं सा गयसुकुमारस्य कुमारस्य माया देवई देवो हंसलवत्तणेणं पडसादएणं प्रागकेते
 पडिच्छद, प्रागकेते पडिच्छित्ता सुरनिना गंधोदएणं पवत्तालेद, सुरनिना गंधोदएणं पवत्तालित्ता
 अगोहि वरेहि गंधेहि, मल्लेहि अच्येद, प्रागेहि वरेहि गंधेहि, मल्लेहि अच्यित्ता सुद्धे यत्थे बंधद, सुद्धे
 वत्थे बंधित्ता रयणकरं उगंति पवत्तवद, पवत्तवित्ता हार-वारिधार-सिदुवार-एण्णमुत्तायत्तियमासाई
 सुयवियोग-वृत्तहाई असुद्धं विणिम्मयमाणी विणिम्मयमाणी एवं ययासो — एतं अहं गयसुकुमारस्य
 कुमारस्य बहुसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्तवेसु य जण्णेसु य एण्णेसु य अपच्छिमे वरिसणे भवित्तइ
 इत्ति कट्ट ऊत्तीसगमूले ठवेद ।

तएवं तस्य गय-सुकुमारस्य अस्मापिपरो बोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सोहासणं रयावेत्ति, बोच्चं
 पि उत्तरावक्कमणं सोहासणं रयावित्ता गयसुकुमारस्य कुमारस्य सेयापीयएहि कलसेहि ष्टावेत्ति

१. महाबल के वर्णन में इस पाठ हेतु—कि पयच्छामो, सेस जहा जमातिस्म तहेव जाव तएण—दिया है । अतः
 प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ महाबल, जमाति घादि के वर्णनो के आधार पर यथावश्यक रूप से सुचित
 है ।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं डुरूडस्स समाणस्स तत्पढमयाए इमे
 अट्टुड्ढमंगलगा पुरओ अहाणुपुब्बोए संपट्टिया; तं जहा-सोरियय-सिरिवच्छ जाव इप्पणा; तयाणंतरं च
 णं पुण्णकलसभिगारं जहा उववाइए, जाव गगणतलमणुलिहंतो पुरओ अहाणुपुब्बोए संपट्टिया; एवं
 जहा उववाइए तहेव भाणियव्वं जाव आलोयं च करेभाणा जयजयसइं च पउंजमाणा पुरओ अहाणु-
 पुब्बोए संपट्टिया । तयाणंतरं च णं बहवे उग्गा नोगा जहा उववाइए जाव महापुरिसवगुरापरिविखत्ता,
 गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुब्बोए संपट्टिया ।

तए णं से गयसुकुमाल-कुमारस्स पिया ष्हाए कयवलिकम्मे जाव हटियव्वंधवरणए सकोरंटमल्ल-
 दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहि उद्धुवमाणीहि हय-मय-रह-पवरजोह-कलियाए
 चाउरंगिणीए सेणाए सट्ठि सपरिवुडे, महयाभउच्चडगर जाव परिविखत्ते गयसुकुमालस्स कुमारस्स
 पिट्टओ अणुगच्छइ ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स—कुमारस्स पुरओ महं आसा आसवरा, उभओ पासि पागा,
 पागवरा, पिट्टओ रहा, रहसंगेल्ली । तए णं से गयसुकुमाल-कुमारे अद्भुग्गवभिगारे, परिगहियतालि-
 यंटे, अतिविसेयछत्तं, पवोइयसेयचामरवालवीयणाए, सव्विबुओ जाव णाइयरवेणं, तयाणंतरं च बहवे
 लट्टिग्गाहा कुंतभाहा जाव पुत्थयग्गाहा, जाव वीणग्गाहा; तयाणंतरं च णं अट्टुसयं गयाणं, अट्टुसयं
 तुरयाणं अट्टुसयं रहाणं; तयाणंतरं च णं लउड-अस्सि-कोतह्थयाणं बहूणं पायत्ताणोणं पुरओ संपट्टियं;
 तयाणंतरं च णं बहवे राईसर-तलवर जाव सत्थवाहूपपिड्डो पुरओ संपट्टिया चारवईए नयरीए
 मउअंमउअंजेणं जेणेव अरहओ अरिट्टुनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं तस्स गयसुकुमाल-कुमारस्स चारवईए नयरीए मउअंमउअंजेणं णिग्गच्छमाणस्स सिघाडग-
 तिय-चउक्क जाव पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा उववाइए, जाव अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं
 ययासी-जय जय णंदा ! धम्मेणं, जय जय णंदा ! तवेणं, जय जय णंदा ! भइं ते अभग्गेहि णाण-
 दसण-चरित्तमुत्तमेहि, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं; जियविग्घो वि य
 वसाहि तं वेव ! सिद्धिमउअं, णिहणाहि य राग-दोसमल्ले, तवेणं धिइधणियव्वडकच्छे, महाहि य अट्टु
 कम्मसत्तु भाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अत्थमत्तो हुराहि आराहणपडागं च धीर ! तेलोक्करंगमउअं,
 पावय वित्तिमिरमणुत्तरं केवलं च णाणं, गच्छ य मोक्खं परं पवं जिणवरोवडिट्ठेणं सिद्धिमग्गेणं
 अकुडित्तेणं, हंता परोसह्चमुं, अभिविय गामकंठकोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घमत्थु, सि कट्टु अवि-
 णंदति, य अभियणति य ।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे चारवईए नयरीए मउअंमउअंजेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छिता जेणेव
 सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता छत्ताईए तिथयगराइसेए पासइ, पासिता
 पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुइ । तए णं तं गयसुकुमालं
 कुमारं धम्मपियरो पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्टुनेमी तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छिता
 अरहं अरिट्टुनेमि तिपपुत्तो जाव णमंसिता एवं ययासी-एवं तलु भंते ! गयसुकुमाले कुमारे अहं
 एगे पुत्ते इट्ठं कते जाव किमंग । पुण पासणयाए, से जहाणाए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव
 सहस्सपत्ते इ वा पके जाए जत्ते संबुडे णोवत्तिपइ संकरएणं, णोवत्तिपइ जलरएणं, एयानेव गयसु-
 कुमाले कुमारे कामोहि जाए, नोगोहि संबुडे णोवत्तिपइ कामरएणं णोवत्तिपइ नोगरएणं णो-
 वत्तिपइ मित्त-णाइ-णियग-सदण-संबधिपरिजणेणं । एस णं देवाणुत्पिया ! संसारभयुत्थिगगे भीए

सोमिल द्वारा उपसर्ग

२२—इमं व णं सोमिले माहणं सामिधेयस्स भद्राए बारवईओ नयरीओ वहिया पुव्वणिगए ।
समिहाओ य दब्भे य कसे य पत्तामोडं य गेण्हइ, गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता महा-
कालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वोईवयमाणे-वोईवयमाणे संभाकालसमयसि पविरलमणुरसंति
गयमुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेर सरइ, सरित्ता धामुरुत्ते रट्टे कुबिए चंडिकिए मिसिमि-
सेमाणे एयं वयाती—

“एस णं भो ! से गयमुकुमाले कुमारे अपत्तिय-जाव [पत्तिये, वुरंत-पंत-त्वखणे, हीण-
पुण्णचाउट्टसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति] परिवज्जिए, जे णं मम धयं सोमसिरोए भारियाए अत्तयं सोमं
दारियं अविट्ठोसपत्तियं कालवत्तिणिये विप्पजहित्ता मुंडे जाव पव्वइए । तं सेयं खलु मम गयमुकुमालस्स
कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए; एयं संपेहेइ, संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्ठियं गेण्हइ,
गेण्हित्ता जेणेव गयमुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयमुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए
मट्ठियाए पालि वधइ, वंथित्ता जलंतोओ चिययाओ फुल्लिपकिमुयसमाणे खड्दिरगाले कहल्लेणं^१ गेण्हइ,
गेण्हित्ता गयमुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पविलवइ, पविलवित्ता भीए तत्थे तसिए उच्चिगमे संजायमए
तओ लिपामेव धयवकमइ, प्रवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउअमूए तामेव दिसं पडिगए ।

दधर सोमिल ब्राह्मण समिधा (यज्ञ की लकड़ी) लाने के लिये द्वारका नगरी के बाहर
मुकुमाल अणगार के दमनानभूमि में जाने से पूर्व ही निकला था। वह समिधा, दर्भ, कुग, डाभ
एव में पत्रामोडों को लेता है। उन्हें लेकर वहाँ से अपने घर की तरफ लौटता है। लौटते
समय महाकाल दमनान के निकट (न प्रति दूर न प्रति सन्निकट) से जाते हुए सध्या काल की
वेला में, जबकि मनुष्यों का गमनागमन नहीं के समान हो गया था, उसने गजमुकुमाल मुनि को वहाँ
ध्यानस्थ गडें देखा। उन्हें देखते ही सोमिल के हृदय में वैर भाव जागृत हुआ। वह क्रोध से तमतमा
उठता है और मन ही मन दग प्रकार बोलता है—

घरे ! यह तो वही अप्रार्थनीय का प्रार्थी (मृत्यु की इच्छा करने वाला), [दुरन्त-प्रान्त-लक्षण
वाना, पुष्पहोन चतुदंशो में उत्पन्न हुआ ही और श्री (लज्जा तथा लक्ष्मी) से] परिवर्जित, गजमुकुमाल
कुमार है, जो मेरी गोमयी भार्या की कुक्षि से उत्पन्न, यौवनावस्था को प्राप्त निर्दोष पुत्री
गोमा कन्या को अपराध ही त्याग कर मुझ ही यावत् श्रमण बन गया है ! इसलिये मुझे निदचय ही
गजमुकुमाल में इन वैर का बदला लेना चाहिये। दग प्रकार वह सोमिल सोचता है और सोचकर
गज सिंघाओं को और देगता है कि वहाँ से कोई देग तो नहीं रहा है। इस विचार से चारों ओर
देगता हुआ पास के ही गानाव में यह गौली मिट्टी लेता है, लेकर गजमुकुमाल मुनि के मस्तरु पर
पाल बाँधता है। पाल बाँधकर जलनी हुई चिना में से फूलें हुए किमुक (पलाश) के फूल से समान
साल-साल के अगारों को किमां सप्पर (टोकरे) में लेकर उन दहकते हुए अगारों को गजमुकुमाल
मुनि के गिर पर रख देता है। रखने के बाद दग भय में कि कहीं उसे कोई देग न ले, भयभीत होकर
धरत कर, त्रस्त होकर एग उद्विग्न होकर वह वहाँ में गौघनापुव्वेक पीछे की ओर हटता हुआ
भागता है। वहाँ में भागता हुआ वह सोमिल जिग और में घावा था उनी ओर चला जाता है ।

गजसुकुमाल मुनि ने श्रमणधर्म की अत्यन्त उत्कृष्ट माराधना की है" यह जान कर अपनी वैश्वशक्ति के द्वारा दिव्य सुगन्धित अचित्त जल की तथा पाच वर्णों के दिव्य अचित्त फूलों एवं वस्त्रों की वर्षा की और दिव्य मधुर गीतों तथा गन्धर्ववाद्ययन्त्रों की ध्वनि से ब्राह्मण को गुजा दिया ।

विबेचन—परम आत्मस्थ, आत्म-समाधि में लीन मुनि गजसुकुमाल ने भोमिल-ब्राह्मण द्वारा की गई यह भोपणानिभोपण हृदयविदारक महावेदना पूर्ण गमभावपूर्वक निद्राप भाव से सहन की परिणामतः केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर वे मोक्ष में पधार गये ।

मोक्ष-प्राप्ति में परममहयोगी रूप (१) शुभ परिणाम और (२) प्रगस्त अध्वयमाय इन दो पदों का "सुभेण परिणामेण पसत्थज्भवसाणेण" शब्दों से सूत्र में उल्लेख किया है । दोनों का अर्थ-विभेद इस प्रकार—१ सामान्य रूप से शुभ निष्पाप विचारों को शुभ परिणाम कहते हैं । २. विभेप रूप से आत्म-समाधि में लग जाने या गभीर आत्मचिन्तन में सलग्न होने की दशा को प्रयास्त अध्वयसाय कहा गया है ।

"तदावरणिज्जाण कम्माण"—इस पद में कर्म विरोप्य है और 'तदावरणीय' यह उसका विशेषण है । कर्म शब्द आत्मप्रदेशों से मिले कर्माणुओं का बोधक है और ज्ञान-दर्शन आदि आत्मिक गुणों को ढँकनेवाले, इस अर्थ का सूचक तदावरणीय शब्द है ।

"कम्मरयविकिरणकर"—कर्म-रजोविकिरण-कर अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप रज-मल का विकिरण—नाश करनेवाले को कम्मरजोविकिरण-कर कहते हैं ।

"अपूर्वकरण—अपूर्वकरणम्, आत्मनोऽभूतपूर्वं शुभपरिणामम्—अर्थात्—अपूर्णकरण शब्द जिसकी पहले प्राप्ति नहीं हुई—इस अर्थ का बोधक है । यह आठवें "निवृत्तिवार गुणस्थान" का भी परिचायक माना गया है । इस गुणस्थान से दो श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं । उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी—उपशम श्रेणीवाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम करता हुआ म्यारहवें गुणस्थान तक जाकर रुक जाता है और नीचे गिर जाता है । क्षपक श्रेणी वाला जीव दशवें गुणस्थान से मोधा वारहवें गुणस्थान पर जाकर अप्रतिपाती हो जाता है । आठवें गुणस्थान में आरूढ हुआ जीव क्षपक श्रेणी से उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ जब बारहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है तब समस्त धातो कर्मों का क्षय करता हुआ कंबल्य प्राप्त कर लेता है । तत्पश्चात् तेरहवें गुणस्थान में स्थिर होता है । आयु पूर्ण होने पर चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त करके परम कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है । प्रस्तुत में सूत्रकार ने "अपूर्वकरण" पद देकर गजसुकुमाल के साथ अपूर्वकरण अवस्था का सम्बन्ध सूचित किया है । भाव यह है कि गजसुकुमाल मुनि ने आठवें गुणस्थान में प्रविष्ट होकर क्षपक श्रेणी को अपना लिया था ।

प्रणते—दमणे आदि पदों की व्याख्या इस प्रकार है—१. अनंत—अंत रहित, जिसका कभी अन्त न हो, जो सदा काल बना रहे । २. अनुत्तर-प्रधान—जिससे बढ़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं है, सबमें ऊँचा । ३. निर्व्याघात-व्याघात—रूकावट रहित । ४. निरावरण—जिस पर कोई आवरण-पर्दा नहीं है, चारों ओर से ज्ञान-प्रकाश की वर्षा करने वाला । ५. कृस्न-संपूर्ण, जो अपूर्ण नहीं है । ६. प्रतिपूर्ण—ससार के सब ज्ञेय पदार्थों को अपना विषय बनानेवाला, जिससे ससार का कोई पदार्थ अशुभल नहीं है ।

तब कृष्ण वासुदेव ने द्वारका नगरी के मध्य भाग से जाते समय एक पुरुष को देखा, अति वृद्ध, जरा से जर्जरित [अति क्लान्त, कुम्हलाया हुआ दुर्बल] एव थका हुआ था। वह दुखी था। उसके घर के बाहर राजमार्ग पर ईंटों का एक विशाल ढेर पड़ा था जिसे वह एक-एक ईंट करके अपने घर में स्थानान्तरित कर रहा था। तब उन कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष अनुकंपा के लिये हाथी पर बैठे हुए ही एक ईंट उठाई, उठाकर बाहर रास्ते से घर के भीत पहुँचा दी।

तब कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाने पर (उनके अनुयायी) अनेक सैकड़ों पुरुषों द्वारा यह बहुत बड़ा ईंटों का ढेर बाहर गली में से घर के भीतर पहुँचा दिया गया।

गयसुकुमाल की सिद्धि की सूचना

२५—तए ण से कण्हे वासुदेवे वारवईए नयरीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छत्ता जेणं धरहा धरिट्ठेनेमी तेणेव उवागए, उवागच्छत्ता जाव [अरहं अरिट्ठेनेमिं तिकखुत्तो प्रायाहिणं पयाहि करेइ, करेत्ता] वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“कहि णं भंते ! से ममं सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे जं णं अहं वंदांमि नमसांमि ?

तए णं धरहा धरिट्ठेनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

“साहिणं णं कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो भट्ठे ।” तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठेनेमिं एवं वयासी—“कण्हा णं भंते ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिणं अप्पणो भट्ठे ?” तए णं धरहा धरिट्ठेनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा गयसुकुमाले णं अणगारे मम कत्तं पुप्पावरण्हकालसमयंसि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—‘इच्छामि णं जाव’ उवसंपग्गित्ता णं विहरइ’ ।”

तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता प्रासुहत्ते जाव^३ सिद्धे । तं एव खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिणं अप्पणो भट्ठे ।

वृद्ध पुरुष की महायत्ना करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य में से होते हुए जहाँ भगवान् धरिष्टनेमि विराजमान थे वहाँ आ गए। कृष्ण ने दाहिनी ओर से आरंभ करके तीन बार भगवान् की प्रदक्षिणा-परिक्रमा की, वदन-नमस्कार किया। उसके पश्चात् गयसुकुमाल मुनि को वहाँ न देखकर उन्होंने धरिहृत धरिष्टनेमि से वदन-नमस्कार करने के बाद पूछा—“भगवान् ! मेरे गहोदर तपुध्याना मुनि गयसुकुमान कहा हैं ? मैं उनको वन्दना-नमस्कार करना चाहता हूँ।”

महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए धरिहृत धरिष्टनेमि ने वहाँ—कृष्ण ! मुनि गयसुकुमान ने मोक्ष प्राप्ति करने का अपना प्रयोजन मिट्ट कर लिया है।

धरिष्टनेमि भगवान् ने अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर कृष्ण वासुदेव धरिष्टनेमि भगवान् के घरों में पुनः निवेदन करने लगे—

आधारित है। आयु वाधते समय अगर परिणाम मद हो तो आयु का बध निमित्त पड़ेगा, अगर परिणाम तीव्र हो तो बध तीव्र होगा। निमित्त बधवाली आयु निमित्त मिलने पर घट जाती है—नियत काल में पहले ही भोग ली जाती है और तीव्र बधवाली (निकाचित) आयु निमित्त मिलने पर भी नहीं घटती है। स्थानाग सूत्र में आयुभेद के सात निमित्त बताये हैं जो इस प्रकार हैं—

१. अश्रुवसाण—अध्यवसान—स्नेह या भय रूप प्रबल मानसिक आघात होने पर आयु समय से पहले ही समाप्त होती है।

२. निमित्त—शस्त्र, दण्ड, अग्नि आदि का निमित्त पाकर आयु शीघ्र समाप्त हो जाती है।

३. आहार—अधिक भोजन करने से आयु घट जाती है।

४. वेदना—किसी भी अंग में असह्य वेदना होने पर आयु के दलिक समय से पूर्व ही उदय में आकर आत्मा से भड़ जाती है।

५. पराघात—गड़बड़े में गिरना, छत का ऊपर गिर जाना आदि बाह्य आघात पाकर आयु की उदीरणा हो जाती है।

६. स्पर्श—सर्प आदि जहरीले जीवों के काटने पर अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श होने पर जिससे शरीर में विष फैल जाए, आयु असमय में ही समाप्त हो जाती है।

७. आण-पाण—श्वास की गति बन्द हो जाने पर आयु-भेद हो जाता है। निमित्तों को पाकर जो आयु नियत काल समाप्त होने से पहले ही अन्तर्मुहूर्तमात्र में भोग ली जाती है, उस आयु का नाम अनपवर्तनीय आयु है। इसे सोपक्रम आयु भी कहते हैं। जो उपक्रम सहित हो वह सोपक्रम है। तीव्र शस्त्र, तीव्र विष, तीव्र अग्नि आदि निमित्तों का प्राप्त होना उपक्रम है। अनपवर्तनीय आयु सोपक्रम और निरुपक्रम दोनों प्रकार की होती है। दूसरे शब्दों में इस अनपवर्तनीय आयु को अकालमृत्यु लानेवाले अध्यवसान आदि उक्त निमित्तों का सनिधान होता भी है और नहीं भी होता है। उक्त निमित्तों का सनिधान होने पर भी अनपवर्तनीय आयु नियतकाल से पहले पूर्ण नहीं होती।

यहाँ इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि बन्धकाल में आयुक्रम के जितने दलिक बधते हैं, उन सब का भोग तो जीव को करना ही पड़ता है, केवल वह भोग जब स्वल्प काल में हो जाता है तब वह कालिक स्थिति की अपेक्षा अकालमरण कहा जाता है।

२७—कहणं भंते ! तेण पुरिसेणं गयमुकुमात्तस्स अणगारस्स साहिज्जे विण्णे ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं धयासो—

से नूणे कण्हा ! तुमं ममं पापयंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नयरीए एग पुरिसं—जावें [जुणं जराज्जजरिपवेहं आउरं भूसियं पिथासियं दुब्वलं किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासोओ एगमेणं इट्टमं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतो गिहं अणुप्पवेससि । तए णं तुमे एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहि पुरिससएहि से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि] अणुप्पवेसिए । जहा णं कण्हा ! तुमे तस्स पुरिसस्स साहिज्जे विण्णे, एयामेव कण्हा । तेणं पुरिसेणं गयमुकुमात्तस्स अणगारस्स अणेगभव-सयसहस्स-सच्चियं कम्मं उदीरेमाणं बहुकम्मणिज्जरथं साहिज्जे विण्णे ।

१. देखिए सूत्र २४.

गई है—बध, उदय, उदीरणा घोर मत्ता । मिष्यायादि के निमित्त मे जानातन्मयीय पादि के रूप में परिणत होकर कर्म-पुद्गलों वा प्राण्मा के साथ रूप-मानो हो गइ मित्त जाना बर है । प्रवाधाकाल समाप्त होने पर घोर उदय-काल-कलशान हा ममय घाने पर कर्मा का मुभानुभ फल देना उदय है । प्रवाधाकाल (बधे हुए कर्मा वा जड नरु प्राण्मा हो फल नहीं मिलना यह काल) व्यतीत हो चुकने पर भी जो कर्म-दैनिक बाद मे उदय मे घानेवाले है, उनको प्रयत्न-विशेष से मीच कर उदय-प्राप्त दैनिकों के साथ भोग लेना उदीरणा है । बधे हुए कर्मा का प्राने स्वरूप को न छोड कर घ्रात्मा के साथ नगे रहना मत्ता है । उदय घोर उदीरणा मे यह प्रन्तर है कि उदय मे किसी भी प्रकार के प्रयत्न के बिना स्वाभाविक तम मे कर्मा के फल का भोग होता है और उदीरणा मे प्रयत्न करने पर ही कर्मफल का भोग होता है । प्रमगुल मे मुनि गजमुकुमाल ने जो कर्म-फल का उपभोग किया है, वह स्वाभाविक तम मे नहीं किया, किन्तु मोहित ब्राह्मण के प्रयत्न विशेष मे कर्मा का उपभोग करवाया गया है, प्रत यही कर्मा को उदीरणा प्रथं प्रोक्षित है ।

सोमित ब्राह्मण का मरण

२८—तए णं से कण्हे वामुदेवे अरहं अरिट्ठेणेमि एवं ययासो—से णं भंते ! पुरिसे मए कहे जाणिमव्वे ? तए णं अरहं अरिट्ठेणेमी कण्हं वामुदेवें एवं ययासो—जे णं कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइमेएणं कालं करिस्सइ, तण्णं तुमं जाणिज्जासि “एस णं से पुरिसे ।” तए णं से कण्हे वामुदेवे अरहं अरिट्ठेणेमि यंबइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता जेणेव घामि-सेयं हरियरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हरियि बुद्धइ, बुद्धित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं तस्स सोमितलमाहणस्स कल्लं जाव' जलंते अयमेयाकूवे अज्झत्तियए चित्तिए पत्थियए मणोगए संकप्पे सम्पण्णे—एयं खलु कण्हे वामुदेवे अरहं अरिट्ठेणेमि पायवंदए निग्गए । तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वामुदेवस्स । तं न नज्जइ णं कण्हे वामुदेवे ममं केणइ कु-मारिणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए तस्ये तसिए उच्चिमगे संजाय-भए सयाप्रो गिहाप्रो पडिणिबलमइ । कण्हस्स वामुदेवस्स बारवई नयरि अणुप्पविसमाणास्स पुरमो सपडिबल सपडिबलिसि हव्वमाणए ।

‘भगवान् अरिट्ठेणेमि द्वारा अपने प्रदन का समाधान प्राप्त करके कृष्ण वामुदेव फिर भगवान् के चरणों में निवेदन करने लगे—“भगवन् ! मैं उस पुरुष को किस तरह पहचान सकता हूँ ?’ श्रीकृष्ण के इस प्रदन का समाधान करते हुए भगवान् अरिट्ठेणेमि कहने लगे—‘कृष्ण ! यहाँ से लौटने पर जब तुम द्वारका नगरी में प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुष तुम्हें देखकर भयभीत होगा, वह वहाँ पर मडा-मडा ही गिर जाएगा । प्रायु की समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा । उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है ।’ अरिट्ठेणेमि भगवान् द्वारा अपने प्रदन का उत्तर मुनकर भगवान् अरिट्ठेणेमि को वदन एवं नमस्कार करके श्रीकृष्ण ने वहाँ से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्तिरत्न पर बैठकर अपने घर की ओर रवाना हुए ।

उधर उस मोहित ब्राह्मण के मन में दूसरे दिन सूर्योदय होते ही इस प्रकार विचार उत्पन्न

ममं सहोदरे कृणीयसे भायरे गयस कुमाले अणगारे अकाले चैव जीविपाओ ववरोविए ति कट्टु सोमितं माहणं पाणेहि कडुवेइ, कडुवेत्ता तं भूमि पाणिएणं अन्नोक्खावेइ, अन्नोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए । सयं गिहं अणुप्पविट्ठे ।

उम समय सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को सहसा सम्मुख देख कर भयभीत हुआ और जहाँ का नहीं स्तम्भित खड़ा रह गया । वही खड़े-खड़े ही स्थितिभेद से अपना आयुष्य पूर्ण हो जाने में मवांग-शिथिल हो घडाम में भूमितल पर गिर पड़ा । उस समय कृष्ण वासुदेव सोमिल ब्राह्मण को गिरता हुआ देखते हैं और देखकर इस प्रकार बोलते हैं—

“अरे देवानुप्रियो ! यही वह मृत्यु की इच्छा करने वाला तथा लज्जा एवं शोभा से रहित सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमाल मुनि को असमय में ही काल का प्राप्त बना डाला ।” ऐसा कहकर कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण के उस शव को चाडालों के द्वारा पगीटया कर नगर के बाहर फिफवा दिया और उस शव के स्पर्श वाली भूमि को पानी से धुलवाया । उम भूमि को पानी में धुलवाकर कृष्ण वासुदेव अपने राजप्रासाद में पहुँचे और अपने प्रागार में प्रविष्ट हुए ।

निशेष

३०—एव एतु जंजू ! सपणेणं भगवया महावीरेणं जाव' संपत्तेणं अट्ठमस्स अगस्स अतगडदमाणं तच्चस्स वागस्स अट्ठमज्जयणस्स अयमट्ठे पणत्ते ।

श्री मृधर्मा स्वामी अपने शिष्य जजू को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे जजू ! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त धमप भगवान् महावीर ने अन्तकृद्गाग मूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अद्ययन का यह धर्म प्रतिपादित किया है ।

१०-१३ अज्जयगारिण

तृतीय वर्ग की समाप्ति

तृतीय वर्ग की समाप्ति

३२—एवं दुम्भुहे वि । कूवए वि । तिण्णि वि वसुदेव-धारिणी-सुए ।

दारुए वि एवं चेव, नवरं- वसुदेव-धारिणी-सुए ।

एवं-अणाहिदुठी वि वसुदेव-धारिणी-सुए ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव^१ संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड्ढस्स तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्जयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

इसी प्रकार दुर्मुख और कूपदारक कुमार का वर्णन जानना चाहिये । दोनों के पिता वसुदेव और माता धारिणी थी ।

दारक और अनाधृष्टि भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि वसुदेव पिता और धारिणी माता थी ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—“हे जंबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने आठवे अंग अतगदसा सूत्र के तीसरे वर्ग के एक से लेकर तेरह अध्यायनों का यह भाव फरमाया है ।”

—

श्रीजवू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—“भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने ऋाठवे अग अतकृतदशा के तीसरे वर्ग का जो वर्णन किया वह सुना । अतगडदशा के चौथे वर्ग के हे पूज्य ! श्रमण भगवान् ने क्या भाव दशायि है, यह भी मुझे बताने की कृपा करें ।”

सुधर्मा स्वामी ने जवू स्वामी से कहा—“हे जवू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने अंतगड दशा के चौथे वर्ग में दश अर्घ्ययन कहे है, जो इस प्रकार है—

(१) जालि कुमार, (२) मयालि कुमार, (३) उवयालि कुमार, (४) पुरुषसेन कुमार (५) वारिपेण कुमार, (६) प्रद्युम्न कुमार, (७) शाम्ब कुमार (८) अनिरुद्ध कुमार, (९) सत्यनेमि कुमार और (१०) दृढनेमि कुमार ।

जवू स्वामी ने कहा—भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने चौथे वर्ग के दश अर्घ्ययन कहे हैं, तो प्रथम अर्घ्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ बताया है ।’

जालि प्रभूति

सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जवू ! उस काल और उस समय में द्वारका नामकी नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अर्घ्ययन में किया जा चुका है । श्रीकृष्ण वामुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे । उस द्वारका नगरी में महाराज ‘वसुदेव’ और रानी ‘धारिणी’ निवास करते थे । यहाँ राजा और रानी का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए । जालिकुमार का वर्णन गौतम कुमार के समान जानना । विशेष यह कि जालिकुमार ने युवावस्था प्राप्तकर पचास कन्याओं से विवाह किया तथा पचास-पचास वस्तुओं का दहेज मिला । दीक्षित होकर जालि मुनि ने बारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया, मोलह वपें दीक्षापर्याय का पालन किया, दोष सब गौतम कुमार की तरह यावत् वानुं ज्ञ पवंत पर जाकर सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार मयालिकुमार, उवयालि कुमार, पुरुषसेन और वारिपेण का वर्णन जानना चाहिये ।

इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी जानना चाहिये । विशेष—कृष्ण उनके पिता और रविमणी देवी माता थी ।

इसी प्रकार शाम्ब कुमार भी; विशेष—उनकी माता का नाम जाम्बवती था । ये दोनों श्रीकृष्ण के पुत्र थे ।

इसी प्रकार अनिरुद्ध कुमार का भी वर्णन है । विशेष यह है कि प्रद्युम्न पिता और बंदर्भ उसकी माता थी ।

इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का वर्णन है । विशेष, समुद्रविजय पिता और शिवा देवी माता थी ।

इसी प्रकार दृढनेमि कुमार का भी वर्णन समझना । ये सभी अर्घ्ययन एक समान हैं ।

सुधर्मा स्वामी ने कहा—इस प्रकार हे जवू ! दश अर्घ्ययनों नामके इस चौथे वर्ग का प्रथम

पंचमो वरगो

पदमं अज्जयणं—पउमावई

म० अरिष्टनेमि का पदार्पण. धर्मदेशनः

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव^१ संपत्तेणं चउरयस्स वगस्स अयमट्ठे पणत्ते, पंचमस्स वगस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव^२ संपत्तेणं के षट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जइ ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव^३ संपत्तेणं पंचमस्स वगस्स वस अज्जयणा पणत्ता, त जहा—

संघहणी-गाथा

(१) पउमावई य (२) गोरी (३) गंधारी (४) लक्षणा (५) मुनीमा य ।

(६) जंबवई (७) सच्चभामा (८) रुप्पिणी (९) मूलत्तिरि (१०) मूलदत्ता वि ॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव^४ संपत्तेणं पंचमस्स वगस्स वस अज्जयणा पणत्ता, पदमस्स णं भंते ! अज्जयणस्स के षट्ठे पणत्ते ?

एवं खलु जइ ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी । जहा पदमे जाव^५ कण्हे वासुदेवे प्राहेवच्चं जाव^६ विहरइ । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्या, वण्णघो ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिष्टनेमो समोसडे जाव [अहापडिहयं उगहं उग्गिहित्ता स'जमेणं तवसा अत्थ्याणं भावेमाणं] विहरइ । कण्हे वासुदेवे निग्गए जाव^७ पज्जुवासइ । तए णं सा पउमावई देवी इमीसे क्हाए लउट्ठा समाणी हट्टुट्ठा जहा देवई देवी जाव^८ पज्जुवासइ । तए णं अरहा अरिष्टनेमो कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य, जाय धम्मकहा । परिता पडिगया ।

आर्य जइ स्वामी ने आर्यं मुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—“भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि अन्तगडमूत्र के चतुर्थं वर्गं का यह अर्थं वर्णन किया है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडमूत्र के पंचम वर्गं का क्या अर्थं प्रतिपादन किया है ?

उत्तर में आर्यं मुधर्मा स्वामी बोले—“हे जइ ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडमूत्र के पंचम वर्गं के दस अज्जयण बताए हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) पपावती देवी (२) गोरी देवी (३) गान्धारी देवी (४) लक्ष्मणा देवी (५) मुनीमा देवी (६) जाम्बवती देवी (७) सत्यभामा देवी (८) रुप्पिणी देवी (९) मूलश्री देवी और (१०) मूलदत्ता देवी ।

अब स्वामी ने पुनः पूछा—“भंते ! श्रमण भगवान् महावीर ने पंचम वर्गं के दस अज्जयण कहे हैं तो प्रथम अज्जयण का क्या अर्थं कहा है ?” मुधर्मा स्वामी ने कहा—

हे जइ ! उग कान उग ममय मे डारका नाम को एक नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम

१—८. प्रथम वर्गं, मूत्र २.

२. प्रथम वर्गं मूत्र २. ९.

३. तृतीय वर्गं, मूत्र १८

४. प्रथम वर्गं, मूत्र ९.

८. तृतीय वर्गं, मूत्र ९.

य माणुस्यैषु य कामभोगेषु मुच्छिद्ये पत्रिणं गिद्धं अग्रभोगवर्णे नो संचाएमि अरहभो अरिद्वनेमि जाव [अंति ए मुं डे भविता अगारायो अणगारियं] पव्वइत्तए ।'

'कण्हाइ ।' अरहा अरिद्वणेमी कण्हं वामुदेवं एणं ययासो—

'से नूनं कण्हा । तव अयं अग्रभरिथिए चितिए परिथिए मणोगए संकल्पे समुप्पजिजया-पण्णं ते जालिप्पभिइकुमारा जाव^३ पव्वइया । से नूनं कण्हा । अरथे समरथे ?

हंता अरिथि ।

तं नो खलु कण्हा ! एयं नूनं वा भयं वा भयिस्सइ वा जण्णं वामुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव^४ पव्वइस्संति ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'न एयं नूनं वा जाव^५ पव्वइस्संति ?

'कण्हाइ !' अरहा अरिद्वणेमी कण्हं वामुदेवं एणं ययासो—

'एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वामुदेवा पुव्वमये निवाणकडा से एतेणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चइ न एयं नूनं जाव^६ पव्वइस्संति ।

अरिहन्त अरिष्टनेमि से द्वारका नगरी के विनाश का कारण सुन-ममभरर श्रीकृष्ण वामुदेव के मन मे ऐसा विचार चिन्तन, प्राथित एव मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ कि—वे जाति, मयालि, उवयालि, पुरिससेन, वीरसेन, प्रचुम्न, याम्भ, अनिरुद्ध, दृढनेमि और सत्यनेमि प्रभृति कुमार धन्य हैं जो हिरण्यदि [सपदा और धन, सैन्य, वाहन, कोप, कोष्ठागार, पुर, अन्त.पुर आदि परिजन छोड़कर तथा बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कासा, द्रुप्य-वस्त्र, मणि, मोती, संख, सिला, मूंगा, लालरत्न आदि मारभूत द्रव्य आदि] देयभाग देकर, नेमिनाथ प्रभु के पास मुडित होकर अगार को त्यागकर अगार रूप मे प्रव्रजित हो गये है । मैं अग्रधन्य हूँ, अकृत-पुण्य हूँ कि राज्य, [कोप, कोष्ठागार, सैन्य, वाहन, नगर] अन्त.पुर और मनुष्य सबधी कामभोगो मे मूर्च्छित हूँ, इन्हें त्यागकर भगवान् नेमिनाथ के पास मुडित होकर अगार रूप मे प्रव्रजित होने मे असमर्थ हूँ ।

भगवान् नेमिनाथ प्रभु ने अपने ज्ञान-बल से कृष्ण वामुदेव के मनमे आये इन विचारों को जानकर आर्त-ध्यान मे डूबे हुए कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार कहा—“निश्चय ही हे कृष्ण ! तुम्हारे मन मे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—वे जाति, मयालि आदि कुमार धन्य है जिन्होंने धन बंधव एव स्वजनों को त्यागकर मुनिव्रत ग्रहण किया और मैं अग्रधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ जो राज्य अन्त.पुर और मनुष्य सबधी काम-भोगो मे मूढ़ हूँ । मैं प्रभु के पास प्रव्रज्या नहीं ले सकता । हे कृष्ण ! क्या यह बात सही है ?”

श्रीकृष्ण ने कहा—“हाँ भगवन् ! आपने जो कहा वह सभी यथार्थ है ।”

प्रभु ने फिर कहा—“तो हे कृष्ण ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वामुदेव अपने भव में धन-धान्य-स्वर्ण आदि संपत्ति छोड़कर मुनिव्रत ले लें । वामुदेव दीक्षा लेते नहीं, तो नहीं एव भविष्य मे कभी लेगे भी नहीं ।”

भीकृष्ण के तीर्थंकर होने को भविष्यवाणी

४—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमि एवं वयासी—

“अरहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उवयज्जिस्सामि ?

तए णं अरहा अरिट्ठणेमो कण्हं वासुदेवं एयं वयासी—

“एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए नयरोए सुरग्गि-वीवायण-कोव-निवट्ठाए अम्मापिइ-निव-विष्णुणे रामेण बलदेवेण सद्धि वाहिणवेयाति अरिभूहे जुहिट्ठित्तपामोक्खलाणं पंचण्हं पंड्याणं पंडुर-पुत्ताणं पासं पंडमहुरं संपत्थिए कोसं चवणकाणणे नगोह्वरपाययस्स अहे पुढवित्तितापट्टए पोयव-पच्छाइय-सरीरे जराकुमारेणं तिषलेणं कोवंड-विष्पमुक्केणं उसुणा यामे पावे विट्ठे समाणे कालम-कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जत्थिए नरए नेरइयत्ताए उवयज्जिहत्थि ।”

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहभो अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भोह्य जाव-भियाइ ।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमो कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—“मा णं तुमं देवाणुप्पिा ! ओहयमण-संकप्पे जावं भियाइ । एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जत्थियाओ नरयाओ अणंतं उवट्ठित्ता इहेव जंसुहीवे वीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेस्स जवणएस्स सयदुवा-नयरे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्सत्थि । तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवत्थिपरियाणं पाउणंत-सिज्जिहत्थिस्स बुज्जिहत्थिस्स मुच्चिहत्थिस्स परिनिव्वाहत्थिस्स सव्वदुक्खलाणं अंतं काहत्थि ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहभो अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठुट्ठ-अप्फोडेइ, अप्फोडेत्ता बग्गइ, वगिग्गत्ता तिबइं छिवइ, छिवित्ता सोहणायं करइ, करत्ता अरहं अरिट्ठणेमि-वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव आभिसेक्क हत्थि उरुहइ, उरुहत्ता जेणेव बारवई नयरो, जेणेव-सए गिहे तेणेव उवागए । आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोहइ, पच्चोहत्ता जेणेव वाहिरिया-उवट्ठाणसाला जेणेव सए सोहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता सोहासणवरंसि पुरत्थाअभिमूहे-निसोयइ, निसोइत्ता कोडुं बियपुरिसे सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी—

तव कृष्ण वासुदेव अरिहत अरिष्टनेमि को इस प्रकार बोले—

“हे भगवन् ! यहाँ से काल के समय काल कर मैं कहाँ जाऊँगा, कहाँ उत्पन्न होऊँगा ?”

इसके उत्तर में अरिष्टनेमि भगवान् ने कहा—

हे कृष्ण ! तुम सुरा, अग्नि और इंद्रपायन के कोप के कारण इस द्वारका नगरी के जल कर-नष्ट हो जाने पर और अपने माता-पिता एवं स्वजनो का वियोग हो जाने पर राम बलदेव के साथ-दक्षिणी समुद्र के तट की ओर पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडवों के समीप पाण्डु मथुरा की ओर जाओगे । रास्ते में विश्राम लेने के लिये कौशाम्ब वन-उद्यान में अत्यन्त विशाल एक-वटवृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर पीताम्बर ओढ़कर तुम सो जाओगे । उस समय मृग के भ्रम में-जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण तीर तुम्हारे बाएँ पैर में लगेगा । इस तीक्ष्ण तीर से बिड़ होकर-तुम काल के समय काल करके वालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी में जन्म लोगे । प्रभु के श्रीमुख से

को दोहरा कर पुन मुझे सूचित करो ।" कृष्ण का यह आदेश पाकर उन आज्ञाकारी राजपुरुषों वंसी ही घोषणा दो-तीन बार करके लौटकर इसकी सूचना श्रीकृष्ण को दी ।

विवेचन - पिछले सूत्रों में श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि में अपने मृत्यु-वृत्तान्त और नूतन जन्म कहा किस स्थिति में होगा, इस सम्बन्ध की जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करते हैं तत्पश्चात् धार्मिक घोषणा करवाते हैं । उनको इस जिज्ञासा के समाधान में भगवान् अरिष्टनेमि उनके तृतीय पृथ्वी में उत्पन्न होने और फिर भावी तीर्थकर चौबीसी में १२ वें अमम नामके तीर्थक होने का भविष्य प्रकट किया है ।

कृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता है । वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार पर अर्थ होता है—“वासुदेवस्य अपत्य पुमान् वासुदेव ।” वासुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं । कृष्ण के पिता का नाम वासुदेव था, अतः इनको वासुदेव कहते हैं । वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है—कृष्ण का दूसरा नाम है, परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ मान्य होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द बन गया है । अतएव सभी अर्थचक्रवर्ती वासुदेव शब्द से कहे जाते हैं । जैन-परम्परा में वासुदेव नौ कहे गए हैं—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषमिह, ६ पुरुष-पुण्डरीक, ७ दत्त, ८ नारायण (लक्ष्मण), ९ कृष्ण । इनमें कृष्ण का अंतिम स्थान है । वासुदेव का पारिभाषिक अर्थ है—जो सान रत्नों, छह खड्गों में से तीन खड्गों का अधिपति हो तथा जो अनेकविध ऋद्धियों में सम्पन्न हो । जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एव मारकर तीन खड्ग पर राज्य किया करते हैं । इसके अनिर्दिष्ट जैन परम्परा में २८ लब्धियों में से वासुदेव भी एक लब्धि मानी है । तीन खड्ग तथा मात रत्नों के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं, इस पद का प्राप्त होना वासुदेव लब्धि है । वासुदेव में महान् बल होता है । इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते हैं—कृष्ण के किनारे बँटे हुए और भोजन करते हुए वासुदेव को जजोरों से बाध कर यदि चतुररिगिणों नेना महिन सोनह हत्रार राजा मिलकर गीचने लगें तो भी वे उन्हें खीच नहीं सकते, किन्तु उमी जजोर को बाए हाथ में पकड कर वासुदेव अपनी और उन्हें ग्रामानो से खीच सकता है ।

जैन ग्रामों में जिन कृष्ण का उल्लेख है वे ऐसे ही वासुदेव हैं, वासुदेव-लब्धि में सम्पन्न हैं । अन्तगडमूत्र में एक वासुदेव कृष्ण का वर्णन किया है । सनातन-धर्मियों के साहित्य में वासुदेव शब्द की अन्त-शास्त्र सम्मत व्याख्या देगने में नहीं आती । वैदिक साहित्य में वासुदेव पदविशेष या लब्धि-विशेष है तथा कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

अन्तगड मूत्र तथा अन्य ग्रामों में स्पष्ट प्रतीत होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के अनन्य श्रेष्ठानु भक्त थे, उपासक थे । यही कारण है कि भगवान् के द्वारका में पधारने पर वे बड़ी मज्जान के साथ दानोनाथ उनकी सेवा में उपस्थित होते हैं, अपने परिवार को साथ ले जाते हैं, उनकी धर्मदेशना सुनते हैं । भगवान् में द्वारकादाह को जान सुनकर स्वयं भगवान् के चरणों में दोक्षित न हो सकने के कारण प्राहुन होते हैं । जालिकुमार प्रादि राजकुमारों के दोक्षित होकर प्राप्त-व-वाणो-नुस होने में उनको प्रगमा करने है । इन सब बातों में प्रमाणित होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के अनुयायी थे । उनके मार्ग पर चलनेवालों को महयोग देते थे, क्षमता न होने पर भी उन पर स्वयं चरने को मज्जिताया रखते थे । मक्षेप में कहा जाय तो कृष्ण महाराज जैन धर्माश्रमियों थे ।

लिया । वामुदेव कृष्ण ने आग घान्न करने के घनेको यत्न किए, पर कर्मों का ऐसा प्रकोप चल रहा था कि आग पर डाला जानेवाला पानी तेज का काम कर रहा था । पानी डालने में आग घान्न होनी है, पर उस समय ज्यो-ज्यो पानी डाला जाना था त्यों-त्यों अग्नि और अधिक भडकाती थी अग्नि की भीषण ज्वालाओं मानों गगन को भी भस्म करने का यत्न कर रही थी । कृष्ण वामुदेव बलराम, सब निराश थे, इनके देखते देखते द्वारका जल गई, वे उमें बना नहीं सके ।

द्वारका के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वामुदेव और बलराम वहाँ में जाने की तैयारी करने लगे । इसी बात को सूत्रकार ने "मुरदीवायणफोयनिदड्वाण" इन पद में अभिव्यक्त किया है ।

"अम्मा-पिड-नियग-विप्पहूणे"—अम्मापित्तु-निजरुविप्रहीणः—मातृपितृभ्या स्वजनेभ्यश्च विहीन —अर्थान् माता-पिता और अपने सम्बन्धियों में रहिन । कथाकारों का कहना है कि जब द्वारका नगरी जल रही थी तब कृष्ण वामुदेव और उनके बड़े भाई बलराम दोनों आग बुझाने की चेष्टा कर रहे थे, पर जब ये सफल नहीं हुए तब अपने महलों में पहुँचे और अपने माता-पिता को बचाने का प्रयत्न करने लगे । बड़ी कठिनाई से माता-पिता को महल में से निकालने में सफल हुए । इनका विचार था कि माता-पिता को रथ पर बैठाकर किसी सुरक्षित जगह पर पहुँचा दिया जाए । अपने विचार की पूर्ति के लिये वामुदेव श्रीकृष्ण जब अश्वशाला में पहुँचे तो देखते हैं, अश्वशाला जलकर नष्ट हो चुकी है । वे वहाँ में चने, रथशाला में आए । रथशाला को आग लगी हुई थी, किन्तु एक रथ उन्हें सुरक्षित पर दोनों भाई जुत गए पर जैसे ही मिहद्वार को पार करने लगे और रथ का जूझा और दोनों भाई द्वार में बाहर निकले ही थे कि तत्काल द्वार का ऊपरी भाग टूट पड़ा और माता-पिता उसी के नीचे दब गए । उनका देहान्त हो गया । वामुदेव कृष्ण तथा बलराम से यह मार्मिक भयकर दृश्य देखा नहीं गया । वे माता-पिता के वियोग में अधीर हो उठे । जैसे-तैसे उन्होंने अपने मन को सभाला, माता पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न महान सताप को धैर्यपूर्वक सहन किया । माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों की इसी विहीनता को सूत्रकार ने "अम्मापिड-नियग-विप्पहूणे" इस पद में नमूचित किया है ।

"रामेण वलदेवेण गड्डि"—का अर्थ है—राम वलदेव के साथ । महाराज वसुदेव की एक रानी का नाम रोहिणी था । रोहिणी ने एक पुष्यवान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया । वह परम प्रभिराम सुन्दर था, दगलिय उमका नाम 'राम' रखा गया । आगे चलकर अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होने के कारण राम के साथ 'वल' विशेषण और जुड़ गया और वे राम, बलराम, बलभद्र हैं । प्रत्येक वामुदेव के बड़े भाई वलदेव कहलाते हैं, ये स्वर्ग या मोक्षगामी होते हैं । बलराम नीचे वलदेव थे । वलदेव और वामुदेव का प्रेम अनुपम और अद्वितीय होता है । महाराजकृष्ण के बड़े भाई वलदेव राम को ही सूत्रकार ने "रामेण वलदेवेण" इन पदों से व्यक्त किया है ।

"दाहिणवेणाण अग्निमुहे जुहिठिन्नपामोक्खाणाण", "पचण्ह पाडवाण पडुरायपुत्ताण पावण पडुमहुर मपत्थिण" का अर्थ है—दक्षिणामुद्र के किनारे पाडुराज के पुत्र युधिष्ठिर आदि पावण पाडवों के पान पाण्डु मथुरा की ओर चल दिये ।

द्वारका नगरी के दग्ध हो जाने पर कृष्ण बड़े चिन्तित थे । उन्होंने बलराम से कहा—मौरों

वाहिए प्रा । शीघ्रस्थान धारणे शीघ्रन पर प्रा गया श्रीर उगी शीघ्रगान्पूरणं निर्दिशे मे श्रीकृष्ण क देहान्ति हो गया ।

“नञ्वाण् वात्स्यप्यभाण् पुट्श्रीण् उज्ज्वलित् नरकम्” —तृतीयवस्था तात्तुहाप्रभावा गुण्डिञ्जा-मुज्ज्वलिते नरके—श्रायंन वात्तुहाप्रभावात्मक तीमगी पुरगी के उज्ज्वलित नरक मे ।

जैन—इष्टि मे यह जगन् ऊर्ध्वनील, मध्याह्निक श्रीर प्राशोर्ध्वीक दश तीन नीलों मे विभक्त है । श्राधोलोक मे मान नरक है । श्राध्वानोक्त के तिन स्थानों मे नंश होकर शीघ्र धारणे पगो का कृत भोजने है, वे स्थान नरक कहलाते है । ये मान पृथिवियों मे विभक्त है जिनके नाम है—ग्रन्था, वगी, नीला, अजला, रिट्टा, मघा तथा मापयई । इनके—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वात्तुहाप्रभा, परत्तभा, धूमप्रभा, तम प्रभा श्रीर महान्तम प्रभा ये मान गोत्र है ।

नट्यार्थ मे मध्वन्ध न रखने वाली मन्ना को ‘नाम’ कहते है श्रीर नट्यार्थ का ध्यान रख कर किन्ती बस्तु को जो नाम दिया जाता है वह ‘गोत्र’ कहलाता है । वात्तुहाप्रभा तीमगी भूमि है । वात्तु-रैत श्रधिक होने से इसका नाम वात्तुकाप्रभा है । शीघ्रस्थभाव मे रगमे उज्ज वेदता होती है । यहा को भूमि जलते हुए अगारो से भी श्रधिक तप्त है ।

कृष्ण वासुदेव वात्तुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वी मे पंदा हुए । उज्ज्वलित शब्द के दो धर्म होते है—पहला तीसरी भूमि का मातृर्धा नरैकैन्द्रक-नरैकस्थान विशेष श्रीर दूसरा भीषण-भयकर । उज्ज्वलित शब्द नरक का विशेषण है ।

“उत्सर्पिणीष्” —उत्सर्पिण्याम्—श्रायत् उत्सर्पिणीकाल मे । जैन शास्त्रकारों ने काल को दो विभागों मे विभक्त किया है, एक का नाम श्रवतीर्पणी श्रीर दूसरे का उत्सर्पिणी है । जिस काल मे जीवों के सहनन (प्रस्थियों को रक्षनाविधेय), मस्थान, क्रमशः हीन होते चले जाए, प्राणु श्रीर प्रवगहना घटती चली जाए, वह काल श्रवसर्पिणी काल कहलाता है । इस काल मे पुद्गलात् के वर्ण, दम, रस श्रीर स्वाद हीन होते चले जाते है । शुभ भाव घटते है, शशुभ भाव बढ़ते है । यह काल दम कोडा-कोडी सागराणम का है ।

इसके विपरीत जिस काल मे जीवों के सहनन प्रादि क्रमशः अधिकार्थिक शुभ होते चले जाते है, प्राणु श्रीर प्रवगहना बढ़ती जाती है, वह उत्सर्पिणी काल है । पुद्गलात् के वर्ण, गंध, रस श्रीर स्वाद भी इस काल मे क्रमशः शुभ होते जाते है । यह काल भी दम कोडा-कोडी सागराणम का है ।

भगवान् शरिट्ठेनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—कृष्ण ! धारणे वाले उत्सर्पिणीकाल मे पुण्ड्र देव के शतशर नगर मे प्रथम नाम के चारहवे तीर्थकर होघोमे ।

भगवान्प्राय के प्रथम पर मे भारतवर्ष मे गाडे २५ देसों को श्रायं भाना गया है । श्रायं देस मे ही शरिट्ठेन, चक्रवर्ती, चलदेव श्रीर वात्तुदेव की उत्पत्ति बताई गई है । यहा प्रत्य उत्पत्तिर नही भिन्नता, ऐसी देसों मे उनका श्रायं देस कम कह सकते है ? भगवान् शरिट्ठेनेमि के कथन-भुमार वही कृष्ण वासुदेव चारहवे तीर्थकर वनेगे, तो कृष्ण देव

इसके बाद वह पचावती महारानी भगवान् अरिष्टनेमि से धर्मोपदेश मुनकर एवं उसे हृदय में धारण करके प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई, उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। यावत् वह अरिष्टनेमिनाथ को बदना-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—

भते ! निग्नन्वप्रवचन पर मैं भ्रष्टा करती हू। जैसा आप कहते हैं वह वैसा ही है। आपका धर्मोपदेश यथार्थ है। हे भगवन् ! मैं कृष्ण वामुदेव की आज्ञा लेकर फिर देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हू।

प्रभु ने कहा—‘जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो। हे देवानुप्रिये ! धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो।’

नेमिनाथ प्रभु के ऐसा कहने के बाद पचावती देवी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ होकर द्वारका नगरी में अपने प्रासाद में आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी और जहा पर कृष्ण वामुदेव थे वहाँ आकर अपने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाकर, मस्तक पर अजलि कर कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार बोली—

‘देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा हो तो मैं अरिष्टनेमिनाथ के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हू।’

कृष्ण ने कहा—‘देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो।’

तब कृष्ण वामुदेव ने अपने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही महारानी पचावती के दीक्षामहोत्सव की विशाल तैयारी करो, घोर तैयारी हो जाने की मुझे सूचना दो। तब आज्ञाकारी पुरुषों ने वैसा ही किया और दीक्षामहोत्सव की तैयारी की सूचना दी।

७—तए षं से कश्चे वामुदेवे पउमावई देवि पट्टयं वुरुहेइ, अट्टसएणं सोवण्णकलसाणं जाव [एवं रूपकलसाणं, सुवण्णरूपकलसाणं, मणिकलसाणं, सुवन्नमणिकलसाणं, हप्पमणिकलसाणं, सुवन्न-एप्पमणिकलसाणं, भोमेज्जकलसाणं सध्वोवएहि, सध्वमट्टियाहि सध्वपुक्केहि सध्वगधेहि सध्वमत्तेहि सध्वोसहिहि म, सिद्धयएहि य, सध्विज्जोए सध्वजुईए सध्वबलेणं जाव [सध्वसमुवएणं सध्वावरेणं सध्वविभूईए सध्वविभूसाए सध्वसंभवेण सध्वपुक्कंधमस्तालंकारेणं सध्वनुच्चिय-सह-सण्णिणाएणं महया इइहीए महया जुईए महया बलेणं महया समुवएणं महया वरनुच्चिय-जमगसमगप्यवाइएण संल-पणव-पइहे-नेरि-भन्तारि-त्तरमूहि-ट्टुक्क-मुरय-मुइंग-वु बुभिधोसरवेणं महया महया] नत्ताणिकलमणानित्तेएणं धमिचित्तइ, धमिचित्ता सध्वालंकारविभूतिय करेइ, करेत्ता पुरिससहस्रवाहिणि सिबियं वुइहावेइ, वुरुहावेत्ता वारवईए नयरोए मग्गमग्गंभेणं निग्गउच्चइ, निग्गउच्चत्ता जेणवे देवयए पववए, जेणवे मत्संबवणे उज्जावे तेणवे उवागच्छइ, उवागच्छत्ता सीयं ठवेइ “पउमावई देवि” सीयाओ पच्चोइइ, पच्चोरहिता जेणवे घरहा धरिट्ठणेमो तेणवे उवागच्छइ, उवागच्छत्ता घरह धरिट्ठणेमि तिक्कत्तो ध्यायाहिण-वयाहिणं करेइ, करेत्ता वंडइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एवं वपासो—

एत षं भवे ! अम धम्ममहिंसो पउमावई नामं देवो इट्ठा कत्ता पिया मणुष्णा मणाभिरामा जाव [जीवियउत्तामा ह्पयाणरत्तणिया, उंबरुत्कं पिय वुत्तहा सवणयाए] किमंग पुण पासवयाए ? तत्त्वं घह देवानुत्पिया ! नित्तिमणिक्क रत्तयाणि । पडिच्छंनु षं देवानुत्पिया ! तिस्सिमिभित्त ।

छठो वर्गो-षष्ठ वर्ग

१-२ अध्ययन

मकाई श्रीर किकम

१—जइ ण भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडवसानं पंच वग्गस्स अयमट्ठे पणत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! वग्गस्स के अट्ठे पणत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडवसानं छट्ठ वग्गस्स सोलस अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—

सगहणी गाहा

(१) मकाइ (२) किकमे चेव, (३) मोगरपाणो य (४) कासवे ।

(५) खेमए (६) धिइहरे, चेव (७) केलासे (८) हरिचंदणे ॥१॥

(९) वारत्त (१०) सुवंसण (११) पुणभइ तह (१२) सुमणभइ (१३) मुपइट्ठे ।

(१४) मेहे (१५) अइमुत्त (१६) अलत्तके, अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

जइ सोलस अज्झयणा पणत्ता, पठमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडवसानं के अज्झयणत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएण रायगिहे नयरे । गुणसिए चेइए । सेणिए राय तय णं मकाई नामं गाहावई परिवसइ-अट्ठे जाव^१ अपरिभूए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे गुणसिए जाव [चेइए अहापडिखवं उग्ग उग्गिहइ, अहापडिखवं उग्गहं उग्गिहित्ता संजमेणं तवसा अण्णाण भावेमाणे] विहरइ । परिस निग्गया । तए णं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए । लट्ठट्ठे जहा पणत्तोए गंगवत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुवे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणोए सोयाए निक्खत्ते जाव^२ अणगारे जाए-इरियासमिए जाव^३ गुत्तवंभवारी ।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवधो महावीरस्स तहाख्खाणं येराणं अतिए सामाअ-माइयाइं एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ । सेसं जहा खदयस्स गुणरयणं तवोक्कम्मं सोलसवासाइं परियापो । तहेव विउत्ते सिद्धे ।

किकमे वि एयं चेव जाव^४ विउत्ते सिद्धे ।

१. वयं ३, मूत्र १.

२-३. वयं १, मूत्र १८.

तृतीय अध्यायन

मुद्गरपाणि

धनुंन माताकार

२—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसीलए चेइए । सेणिए राया । वेण
 तस्य णं रायगिहे नयरे धञ्जुणए नामं मालागारे परिवसइ-अद्धुं जाव' धपरिनुए ।
 धञ्जुणयस्स मातापारस्स बंधुमई नामं भारिया होत्या-सूमालपाणिपाया । तस्स णं धम
 मातापारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थं णं महं एगे पुप्फारामे होस्था-किण्हे जाव [कि
 नीले नीलोभासे, हरिए हरिम्रोभासे, सीए सीग्रोभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिच्चे तिच्चोभासे
 किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए
 तिभवच्छाए, घण-कडिय-कडिच्छाए रस्से महामेह] निउरंबभूए वसद्धवणकुमुमकुमुमिए प
 वरिमणिज्जे धमिह्वे पडिह्वे ।

तस्म णं पुप्फारामस्स धरूरसामते, एत्थ णं धञ्जुणयस्स मालापारस्स धञ्जय-पञ्जय-पि
 यागए धणोगकुलगुरिम-वरं वरागए मोगरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्या-पोराणे दिव्वे
 जहा पुष्पमहे । तस्य ण मोगरपाणिस्स पडिमा एणं महं पलसहस्सणिक्कणं धमोमयं मोगरं
 धिट्ठइ ।

तए णं से धञ्जुणए मालागारे गालप्पभिइं चैय मोगरपाणि-जक्खभत्ते यावि हो
 वस्तावत्ति पच्छियविडगाइ मेण्हइ, मेण्हिता रायगिहाभो नयराभो पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख
 जेणव पुप्फारामे तेणव उवागच्छइ, उवागच्छिता पुप्फुच्चयं करेइ, करेता धग्गाइं वराइं पु
 गहाय, जेणव मोगरपाणिस्स जक्खत्तस्स जक्खाययणे तेणव उवागच्छइ, उवागच्छिता मोगरपा
 जक्खत्तस्स महारिहं पुक्कच्चणं करेइ, करेता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, तभो पच्छा रावममति
 वप्पेमाणे विहरइ ।

उम काय उम समय मे राजगृह नाम का नगर था । वहाँ गुणशीलरुनामक उद्यान था ।
 नगर मे राजा धैनिक राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम चेलना था । उम राजगृह नम
 'धनुंन' नाम का एक माली रहता था । उमकी पत्नी का नाम 'वन्धुमती' था, जो धवल मुद्गर
 मुद्गुमार थी । उम धनुंनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक बड़ा पुष्पाराम (फूलों का उद्यान)
 था । वही पुष्पोद्यान वही वृष्ण वर्ण का था, [इसका कान्तिवाला था, कही मोर के गले से तरह का
 एव नील कान्तिवाला था, वही हरिन एव हरिन कान्तिवाला था । स्पंजी की दृष्टि मे वही भी क
 धान कान्तिवाला, वही म्निग्र एव म्निग्र कान्तिवाला, वर्णादि गुणों की धधिनता के कारण
 एव नाइ क्षासावासा, नामाओं के प्रापम मे मधन मिलने मे गहरो छायावाला, रम्य तथा महान
 ६] अनुसार की तरह प्रतीत हो रहा था । उममे पांचों वर्णों के फूल मिले हुए थे । वही वर्णा
 वर्णों हरि वर प्रमथ एव प्ररुत्तित करने वाला प्रतिनाय दर्शनीय था ।

उम पुष्पाराम पर्याप्त वृक्षवादी के समान ही मुद्गरपाणि नामक यश का यशान्वित था ।
 उम धनुंनमा का के पुष्पाया—वाप-दादी मे जलो धाई कुलपरंपरा मे मन्वन्धित था । वही पुष्प
 नगर के समान पुष्पाना, दिग्ध एव मय प्रभाव वाला था । उममे 'मुद्गरपाणि' नामक मय की
 प्रकृति का विसर होय न एव हृत्कार पत्र-परिमाण (उन्मान मान के धनुमार लगभग ६२० म
 नदुम्नार १२५२ २३ क्रि।श) भाववाला लोहे का एक मुद्गर था ।

उस राजगृह नगर में 'ललिता' नाम की एक गोष्ठी (मित्रमंडली) थी। वह (उसके मदम्य) धन-धान्यादि से सम्पन्न थी तथा वह बहुतां से भी परामर्श को प्राप्त नहीं हो पाती थी। किसी समय राजा का कोई अभिष्ट-कार्य संपादन करने के कारण राजा ने उस मित्र-मंडली पर प्रमत्त होकर अभयदान दे दिया था कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य करने में स्वतन्त्र है। राज्य की ओर से उसे पूरा सरक्षण था, इस कारण यह गोष्ठी बहुत उच्छ्रित और स्वच्छन्द बन गई।

एक दिन राजगृह नगर में एक उत्सव मनाने की घोषणा हुई। इस पर अर्जुनमाली ने अनुमान किया कि कल इस उत्सव के अवसर पर बहुत अधिक फूलों की मांग होगी। इसलिये उस दिन वह प्रातःकाल में जल्दी ही उठा और वास की छत्रछाया लेकर अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ जन्नी घर से निकला। निकलकर नगर में होता हुआ अपनी फुलवाड़ी में पहुँचा और अपनी पत्नी के साथ फूलों को चुन-चुन कर एकत्रित करने लगा। उस समय पूर्वोक्त "ललिता" गोष्ठी के छह गोष्ठीकर पुरुष मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में आकर आमोद-प्रमोद करने लगे।

४—तएवं अर्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि पुष्पचयं करेइ, (परिययं मरेइ), मरेत्ता अग्गाइं वराइं पुष्पाइं गहाय जेणव भोगारपाणिस्स जवलस्स जख्खायणे तेणव उवागच्छइ। तएवं ते छ गोट्ठिस्सा पुरिसा अर्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धि एज्जमाणं पासति, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासो—

"एसं णं वेवाणुप्पिया ! अर्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि इहं हवमामच्छइ। तं सेयं सत्तु वेवाणुप्पिया ! अग्गं अर्जुणयं मालागारं अयमोइय-बंधणयं करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धि विउत्ताइं भोगभोगाइं भुज्जमाणं विहरित्तए," त्ति कट्ठे, एयमदं अण्णमण्णस्स पडिमुणेति, पडिमुणेतता क्वाइंतरेसु निलुक्कति, निच्चत्ता, निष्फंवा, तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठंति। तएवं से अर्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि जेणव भोगारपाणिस्स जवलस्स जख्खायणे तेमेव उवागच्छइ, आलोए पणामं करेइ, महरिहं पुष्पचयं करेइ, जण्णपायपडिए पणामं करेइ। तएवं छ गोट्ठिस्सा पुरिसा वयवस्स क्वाइंतरेहितो निग्गच्छति निग्गच्छित्ता अर्जुणयं मालागारं वेक्कति, वेक्कित्ता अयमोइय-बंधणं करेति। बंधुमईए मालागारोए सद्धि विउत्ताइं भोगभोगाइं भुज्जमाणं विहरंति।

उधर अर्जुनमाली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ फूल-संग्रह करके उनमें से कुछ उत्तम फूल छांटकर उनमें निश्चय-नियम के अनुसार मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा करने के लिये यक्षायतन की ओर चला। उन छह गोष्ठीकर पुरुषों ने अर्जुनमाली को बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन की ओर जाने देखा। देखकर परस्पर विचार करके निश्चय किया—“अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ उधर ही जा रहा है। हम लोगों के लिये यह उत्तम अवसर है कि अर्जुनमाली को तो मोठी मुश्किलों (दोनों हाथों को पीठ पीछे) से बन्धुमती के साथ एक ओर पटक दे और बन्धुमती के साथ गूब काम ब्रह्मा करे।” यह निश्चय करके वे छहों उम यक्षायतन के किवाड़ों के पीछे छिप कर निश्चय ही हो गये और उन दोनों के यक्षायतन के भीतर प्रविष्ट होने की स्वाम रोककर प्रतीक्षा करने लगे। उधर अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन में प्रविष्ट हुआ और यक्ष पर दृष्टि पड़ते ही उसे शनाम किया। फिर चुने हुए उन्नमोत्तम फूल उम पर चढ़ाकर दोनों घटने भूमि पर टेंककर शनाम किया। उमों गमय गोप्रता ने उन छह गोष्ठीकर पुरुषों ने किवाड़ों के पीछे में निकल

उपसर्ग-निवारण

११—तए णं से मोग्गरपाणो जबल्ले सुवंसणं समणोवासयं सध्वघो समंता परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाएइ सुवंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुवंसणस्स समणोवासयस्स पुरघो सपविन्न सपडिविसि ठिच्चा सुवंसणं समणोवासयं अणिमित्ताए विट्ठीए सुच्चिरं निरिबल्लइ, निरिबल्लत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरोरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता तं पत्तसहस्सणिक्कणं अघोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउअन्नूए तामेव विसं पडिगए ।

तए ण से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जबल्लेणं विप्पमुबके समाणे 'घसं' ति धरणिपत्तंसि सव्वंगेहि निवडिइए । तए णं से सुवंसणे समणोवासाए 'निश्चसग्ग' मिति कट्ठु पडिअं पारेइ ।

मुद्गरपाणि यक्ष मुद्गंन श्रावक के चारों ओर घूमता रहा और जब उसको अपने तेज में पराजित नहीं कर सका तब मुद्गंन श्रमणोपासक के सामने आकर खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि में बहुत देर तक उसे देखता रहा । इसके बाद उस मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन माली के शरीर को त्याग दिया और उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया ।

मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही अर्जुन मालाकार 'घस' इस प्रकार के शब्द के साथ भूमि पर गिर पड़ा । तब मुद्गंन श्रमणोपासक ने अपने को उपसर्ग रहित हुआ जानकर अपनी प्रतिज्ञा का पारण किया और अपना ध्यान खोला ।

विशेषण—प्रस्तुत सूत्र में यह दर्शाया गया है कि सेठ मुद्गंन को देखकर अर्जुन माली ने अपना मुद्गर उछाला तो नहीं पर वह आकाश में अधर ही रह गया । मुद्गंन की आत्म-शक्ति की तेजस्विता के कारण वह किसी भी प्रकार से प्रत्यापात नहीं कर पाया । सूत्रकार ने इस हेतु— "तेजसा गमभिपडित्तए" पद का प्रयोग किया है । मुद्गरपाणि यक्ष ने मुद्गंन पर आश्रमण किया, परन्तु उनकी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण आघात नहीं कर पाया । यह स्वयं तेजोनिहीन हो गया ।

मुद्गंन के प्रयाधारण तेज में पराभूत मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुन माली के शरीर में से भाग गया और अर्जुन माली भूमि पर गिर पड़ा । तब मुद्गंन ने "सकट टल गया" यह समझ कर अपना वज्र समाप्त कर दिया ।

मुरगंन ओर अर्जुन ओ अणवत्तपुंवात्ता

१२—तए णं से अज्जुणए मालागारे ततो मुत्तंतरेणं आसस्ये समाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता मुरंतण समणोवासय एव वयात्तो—

"मुद्गे णं देवाण्णिय्या ! के क्खि वा संपत्तिय्या ?

तए णं से मुरंतणे समणोवासाए अज्जुणयं मालागारं एव वयात्तो—

"एवं तत्तु देवाण्णिय्या ! एहं मुरंतणे नामं समणोवासाए-अभिययज्जीवाज्जीवे पुणत्तित्तए केएर समच्चं भयवं महाशोरे वरए सत्तिय्या ।"

१२२
 १२३
 १२४
 १२५
 १२६
 १२७
 १२८
 १२९
 १३०

१३१
 १३२
 १३३
 १३४
 १३५
 १३६
 १३७
 १३८
 १३९
 १४०

१४१
 १४२
 १४३
 १४४
 १४५
 १४६
 १४७
 १४८
 १४९
 १५०

१५१
 १५२
 १५३
 १५४
 १५५
 १५६
 १५७
 १५८
 १५९
 १६०

‘अदीर्घो’ त्यादि तत्रादीन. शोकाभावात् अविमना न घून्यचित्तः अकल्पो द्वेषवर्जितत्वात् अनाविन जनाकुलो वा नि शोभत्वात् अविपादो कि मे जीवितेनेत्यादि चिन्तारहितः, अतएवापरितान्त.—अविश्रान्तो योग —ममाधिष्यस्य सः तथा स्वाधिकेनन्तत्वाच्चापरितान्तयोगी ।

इसका अर्थ इस प्रकार है—

मन में किसी प्रकार का शोक न होने से अर्जुन मुनि अदीन-दीनता से रहित थे, समाहित चित्त होने में अविमन थे, द्वेष-रहित होने से मन में किसी प्रकार की कल्पुता-मलिनता और घ्राकुलता नहीं थी। शोभगून्य होने से मन में किसी प्रकार का विपाद-दुःख नहीं था। ‘मेरा इस प्रकार के निरमृत जीवन से क्या प्रयोजन है,’ ऐसी ग्लानि उनके मन में नहीं थी, अतएव वह निरन्तर ममाधि में लीन थे। समाधि में मग्न रहने के कारण ही अर्जुन मुनि को अपरितान्तयोगी कहा गया है। अपरितान्त योग शब्द में स्वार्थ में ‘इन’ प्रत्यय लगा कर अपरितान्तयोगी शब्द बनता है।

“विलम्बित वृष्णगभूषण ग्रन्थामेण तमाहार आहारैश्च”—का अर्थ है—जिस प्रकार साप विल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार आहार को ग्रहण किया गया। इन पदों का अर्थ वृत्तिकार के शब्दों में इस प्रकार है—

“विलम्बित वृष्णगभूतेन आत्मना तमाहारमाहारयति—यथा भुजगो विलस्य पार्ष्वभागद्वय-मग्नस्पृशन् मध्यमागंत एवात्मानं विले प्रवेगयति तथा मुपस्य पार्ष्वद्वयस्य संरहितमाहार कच्छान्ताभिमुप प्रवेस्याद्द्वारयतीति भावः ।”

पर्यान्तु व्रंसे सपं विल के दोनों भागों का स्पष्ट किए बिना केवल विल के मध्यभाग में ही शिव में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार अर्जुन मुनि मुप के दोनों भागों का स्पष्ट किए बिना केवल मुप में घ्राहार रख कर गये के नाँचे उतार लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार विल में प्रवेश करते समय सर्प अपने शरीर का उगने स्पष्ट नहीं करता, बड़े मकोच में उसमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार किसी प्रकार के प्राम्वाद की घोषणा न करते हुए रागद्वेष में रहित होकर मुप में जंम स्पष्ट ही नहीं हुआ ही, इस प्रकार में केवल भूमा की निवृत्ति के उद्देश्य में अर्जुन मुनि घ्राहार लेवन करते हैं। इस कथन में इसी रम्यविषयक सूत्रों के प्रात्यन्तिक प्रभाव का समूचन किया गया है। मयमी व्यक्ति को उद्दृष्ट मापना रमनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना है। अर्जुन मुनि ने इस मापना के रहस्य को अपनी भाँति समझ लिया था और उसे जीवन में उतार भी लिया था।

तेन घोरारोपेन विजयेन पयसेण पमहिएण महाणुभाषेण तयोः कर्मणः—तेन पूर्वभक्तिन उदारोप—प्रधानेन, विपुलेन—विगातेन भगवता दत्तेन, प्रगृहीतेन उद्दृष्टभावतः स्वोद्देतेन, महाणु-भाषेन-महाणु अनुभाग प्रभावो यस्य, तेन तप.कर्मणा । यहाँ पर अर्जुनमुनि ने जो तप घ्राहार किया है उस तप को महाना ही परिधिस्त किया गया है। प्रस्तुत पाठ में तप.कर्म विरोध है और उदार घ्रादि उसके विरोध है। इसी अर्थविचारणा इस प्रकार है—

तेन — यह शब्द पूर्व प्रतिपादित तप की घोष करके करना है। अर्जुन मुनि के मापना-प्रकार से उदाहरण दिया था कि अर्जुनमुनि जब नगर में निशाने जाने से तब उनही लोगों की घोर ने यह कहा-जसा कहा जाता था, उसका प्रभाव किया जाता था, यह शब्द ही तप ही तप ही

होती है। तप रूप अग्नि के द्वारा कर्म-मन के भस्मसात् होने पर आत्मा शुद्ध स्फटिक की भांति निर्मल हो जाती है। इसलिए अर्जुनमुनि ने मयम ग्रहण करने के अनन्तर अपने कर्ममल युक्त आत्मा निर्मल बनाने के लिये तपरूप अग्नि को प्रज्वलित किया। परिणाम-स्वरूप वे केवल्य-प्राप्ति अनन्तर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए।

श्रेणिकचरित्र मे लिखा है कि अर्जुनमाली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष का पाच मास दिनों तक प्रवेश रहा। उसमें उसने ११४१ व्यक्तियों का प्राणान्त किया। इसमें २७० पुरुष और १६३ स्त्रियाँ षुधी। इसमें स्पष्ट प्रमाणित है कि वह प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करता रहा यहाँ एक आसका होती है कि जिस व्यक्ति ने इतना बड़ा प्राणि-वध किया और पाप कर्म से आत्मा का महान् पतन किया, उस व्यक्ति को केवल छह मास की साधना में कैसे मुक्ति प्राप्त हो गई?

उत्तर यह है कि तप में अचिन्त्य, अतर्क्य एवं अद्भुत शक्ति है। आगम कहता है—भवकोटि सचिय कम्म तवसा निज्जरिज्जइ ।' अर्थात् करोड़ों भवों में मर्चित किए-याधे कर्म भी तपदर्शनों द्वारा नष्ट किए जा सकते हैं। यह भी कहा गया है—

अण्णाणी ज कम्म खवेइ भवसयसहस्सकोडीहि ।

त नाणी तिहि गुत्तो, सवेइ ऊत्तासमेत्तेण—प्रवचनसार ।

अर्थात् अज्ञानी जीव जिन कर्मों को लाखों-करोड़ों भवों में खपा पाता है, उन्हें त्रिगुप्त—मन, वचन, काय का गोपन करने वाला ज्ञानी आत्मा एक श्वास जितने स्वल्प काल में क्षय कर डालता है।

जब तीव्रतर तप की अग्नि प्रज्वलित होती है तो कर्मों के दल के दल मूले घास-फूस की तरह भस्मसात् हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि अर्जुन मालाकार द्वारा जो वध किया गया, वह प्रस्तुतः यक्ष द्वारा किया गया वध था। अर्जुन उस समय यक्षाविष्ट होने से पराधीन था। वह तो यत्र की भांति प्रवृत्ति कर रहा था। अतएव मनुष्यवध योग्य कपाय की तीव्रता उसमें संभव नहीं।

४-१४ अध्ययन

काश्यप आदि गाथावति

१५—तेणं बालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए । सेणिए राया, कासवे नामं गाहावई परिवसइ । जहा मकाई । सोलस वासा परिव्याओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—लेमए वि गाहावई, नवरं-कायंदी नयरो । सोलस वाता परिव्याओ विपुले पध्वए सिद्धे ।

एवं—धिइहरे वि गाहावई कायंदीए नयरीए । सोलस वासा परिव्याओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—केलासे वि गाहावई, नवरं-साएए नगरे । बारस वासाइ परिव्याओ विपुले सिद्धे ।

एवं—हरिचबणे वि गाहावई साएए नयरे । बारस वासा परिव्याओ विपुले सिद्धे ।

एवं—यारसए वि गाहावई, नवरं-रायगिहे नयरे । बारस वासा परिव्याओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—मुवंसणे वि गाहावई, नवरं-वाणियगामे नयरे । वूइपलासए चेइए । पब वासा परिव्याओ । विपुले सिद्धे ।

विवेचन—प्रस्तुत मूत्र में ग्यारह श्रावकों का उल्लेख किया गया है। ये सब मांह-ममल के बन्धन तोड़कर तथा बंराय में नाता जोड़कर मंगलमय कृपाणागर भगवान् महावीर के वरणों में पहुँचकर दीक्षित हो गये। इनके जीवन में जो-जो अन्न है वह निम्नोक्त तालिका में दिया जा रहा है—

नाम	नगर	उद्यान	वीक्षा-पर्याय	निर्वाण-स्थान
१. श्री काश्यपजी	राजगृह नगर	गुणगोलक	१६ वर्ष	विपुल पर्वत
१. श्री दोमकजी	काकदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
३. श्री धृतिधरजी	काकदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
४. श्री कलागजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
५. श्री हरिचन्दनजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
६. श्री वारत्तकजी	राजगृह नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
७. श्री सुदर्शनजी	वाणिज्यग्राम नगर	चुतिपलान	५ वर्ष	विपुल पर्वत
८. श्री पूर्णभद्रजी	वाणिज्यग्राम नगर		५ वर्ष	विपुल पर्वत
९. श्री सुमनभद्रजी	श्रावस्ती नगरी		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत
१०. श्री सुप्रतिष्ठितजी	श्रावस्ती नगरी		२७ वर्ष	विपुल पर्वत
११. श्री मेघकुमारजी	राजगृह नगर		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत

का वर्णन श्लोचानुसार मृगमय तथा शक्ति । मृगमय शब्द का अर्थ धीरे धीरे का प्रामाण्य प्रतिमुक्त नाम का कुमार या जो पतंग मुकुमार था ।

उम काल धीरे उन समय श्रमण भगवान् महावीर पटना के निकले हुए, एक गाम में रुके गाम को पावन करने हुए धीरे नागेश्वर मंदिर में रहित—मध्यम में प्राप्त ता तो माता-पिता में रहित विहार करने हुए पोलासपुर नगर के शीतल उद्यान में पधार ।

उम काल, उम समय श्रमण भगवान् महावीर के उपर दक्षिण-दक्षिण, दक्षिणाप्रति में रुके अनुसार निरन्तर बने-बने ता तप करने हुए मध्यम धीरे तप में वाग्मया का भावित करने हुए शिवरते थे । पारण के दिन पहली पौरुषी में महाप्राण, दूसरी पौरुषी में ध्यान और तीसरी पौरुषी में शारीरिक शीघ्रता में रहित, मानसिक चपलता रहित, साहजिक धीरे उत्सुकता रहित, होकर मुगवस्त्रिका को पडितेयता करने हे धीरे फिर पाया धीरे तथा ही प्रतिनिधता करते हे । फिर पात्रों की प्रमाजता करके धीरे पात्रों को लेकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहाँ घ्राए, आकर भगवान् को बदना-नमस्कार कर उम प्रकार निवेदन किया—

“हे भगवन् ! आज पट्टभक्त के पारण के दिन भागही माता होने पर पोलासपुर नगर में ऊंच, नीच, धीरे मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेने के लिये जाना चाहता हे ।”

श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—देवानुप्रिय ! जित प्रकार तुम्हें मुग हो, करो, उमने विलम्ब न करो ।

भगवान् की आज्ञा होने पर गौतमस्वामी भगवान् के पास में, मृगमयनिक चेत्य में निकले । निकल कर शारीरिक त्वरा और मानसिक चपलता में रहित एवं साकुलता व उत्सुकता में रहित युग (धूसरा) प्रमाण भूमि को देखते हुए ईशममितिपूर्वक पोलासपुर नगर में घ्राये । वहाँ ऊंच, नीच, धीरे मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि अनुसार भिक्षा हेतु] श्रमण करने लगे ।

इधर अतिमुक्त कुमार स्नान करके वायत् शरीर की विभूषा करके बहुत में लड़के-लड़कियों, बालक-बालिकाओं और कुमार-कुमारियों के साथ अपने घर में निकले धीरे निकल कर जहाँ इन्द्र-स्थान अर्थात् श्रीडास्थल था वहाँ घ्राये । वहाँ आकर उन बालक बालिकाओं के साथ खेलने लगे ।

उस समय भगवान् गौतम पोलासपुर नगर में नम्पन्न-असम्पन्न तथा मध्य कुलों में वायत् श्रमण करते हुए उम श्रीडास्थल के पास से जा रहे थे ।

बिबेचन—प्रस्तुत मृग पोलासपुर के राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा श्रमण भगवान् महावीर के प्रथम गणधर गौतम के मधुर-मिलन या प्रथम मुलाकात का वर्णन प्रस्तुत करता हे ।

इसमें अतिमुक्त जिनके साथ खेलते हे, उनके लिये “दारएहि य, डिभएहि य, कुमारएहि य” शब्द का प्रयोग हुआ हे । दारक, डिभक तथा कुमार ये तीनों शब्द समानार्थी प्रतीत होते हे परन्तु वृत्तिकार ने इनके विभिन्न अर्थ इस प्रकार बताये हे—दारक—सामान्य बालक, अच्छी आयु वाला, डिभक—छोटी आयुवाला, कुमार—अविवाहित ।

खेलने वाले स्थान को “इन्द्रस्थान” कहा हे जिसका अर्थ होता हे श्रीडास्थान, जहाँ पर इन्द्रस्तम्भनामक एक मोटा तथा गाड़कर बालक और बालिकाएँ खेलते हे ।

इसके बाद भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार इस प्रकार बोले—

‘हे देवानुप्रिय ! आप कहाँ रहते हैं ?’

भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार को उत्तर दिया—

देवानुप्रिय ! मेरे धर्माचार्य श्रीर धर्मापदेशक भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, भावत् शाश्वत स्थान—मोक्ष के अभिलाषी इसी पोलासपुर नगर के बाहर श्रौवन उद्यान में मर्यादानुसार स्थान ग्रहण करके समम एव तप से आत्मा को भावित कर विचरते हैं । हम वही रहते हैं ।’

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि बालक अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम से तीन प्रश्न किये थे । वे प्रश्न हैं—आप कौन हैं ? आप किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं ? आप कहाँ पर रहते हैं ? प्रस्तुत सूत्र में इन तीनों के उत्तर भी दिये गये हैं । प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् गौतम ने अपना परिचय देने के साथ-साथ साधु-जीवन की मर्यादा का वर्णन भी कर दिया है ।

प्रथम प्रश्न के उत्तर में गौतम स्वामी ने कहा—‘हम श्रमण हैं, निर्गन्ध, ईर्यासमित एव ब्रह्म-चारी हैं ।’ वस्तुतः ये चारों शब्द साधु-मर्यादा के परिचायक हैं । उनकी व्याख्या इस प्रकार है—तपस्वी श्रमण प्राणिमात्र के साथ समतामय समान व्यवहार करने वाले महापुरुष श्रमण कहलाते हैं । जो परिग्रह में रहित है श्रमण जिनमें राग-द्वेष की ग्रन्थि नहीं वे निर्गन्ध हैं । ईर्या-गमन सबंधी समिति-विवेक धर्मान् धारण देवकर तथा भावधानों से चलता ईरियासमित है । चतुर्थ महाव्रत ब्रह्मचर्य के परिपालक साधक को ब्रह्मचारी कहते हैं ।

दूसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार से कहा—‘वत्त ! मैं निःशार्थ भ्रमण कर रहा हूँ ।’

तीसरे प्रश्न के उत्तर में गौतम स्वामी ने श्रौवन उद्यान में मेरा निवास है, ऐसा न कहकर श्रौवन उद्यान में परमात्मा महावीर के पास हमारा निवास है, ऐसा बताया । इसमें उनकी भ्रमण गुरुभक्ति भक्तानी है ।

विश्लेषण—.....माइमेण—इस पद में विपुल शब्द के कई अर्थ पाए जाते हैं—प्रभूत, प्रभुर, विस्तराण, विगत, उत्तम, श्रेष्ठ आदि । प्रस्तुत में ‘उत्तम’ अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

अतिमुक्त का गौतम के साथ सम्बन्ध गमन

१७—तए ष से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एव वयातो—

“यच्छामि षं भते ! यह तुय्येहिं त्तिं समणं भगवं महावीरं पायवंहए ।”

“महामुहं देवाण्णिय्या ! मा परिबंधं करेहि ।”

तए षं मे अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं त्तिं जेणं व समणे भगवं महावीरे तेणं व उवाचव्वुद, उवाचच्छिता गमणं भगवं महावीरं तिस्सुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ववइ जाइ’ पइइवासइ ।

अतिमुक्त कुमार ने अपनी बात स्पष्ट करते हुआ कहा कि धर्म के संबंध में मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। धर्म की पूर्ण परिभाषा मैं नहीं जानता तथापि कुछ न कुछ जानता अवश्य हूँ। मुझे नन्हा बालक समझकर ऐसा न मान लें कि धर्म-तत्त्व से मैं सर्वथा अपरिचित हूँ। मुझे इन बातों का बोध है कि जो पैदा हुआ है, उसे एक दिन मरना है, जन्म के साथ मृत्यु का अनादि कालीन संबंध है। जन्म लेने वाले को एक दिन मृत्यु का आस बनना ही पड़ता है। यह मैं जानता हूँ, पर मुझे यह नहीं पता कि कब? कहाँ और कैसे? कितने समय के अनन्तर मृत्यु का प्रहार मड़न करना पड़ेगा? मैं यह नहीं समझता कि जो वृत्त कर्मबन्ध के कारणों से चारों गतियों में जन्म लेते हैं परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ कि अपने किए हुए कर्मों के कारण ही जीव नरकादि गतियों में उत्पन्न होते हैं।

अतिमुक्त कुमार के प्रस्तुत कथानक में अल्पज्ञ और सर्वज्ञ का स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त "कम्माययणेहि" शब्द का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है— "कम्माययणेहि त्ति, कम्मणा ज्ञानावरणीयादीनामायतनानि आदानानि वधहेतव इत्यर्थः। पाठान्तरेण "कम्माययणेहि त्ति" तत्र कर्मापतनानि ये कर्मापतति-आत्मनि सभवति, तानि तथा"—अर्थात् "कर्म" शब्द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मों का संसूचक है और "आयतन" शब्द वध के कारणों का परिचायक है। कहीं-कहीं "कम्माययणेहि" के स्थान पर "कम्मावययणेहि" ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। जिन कारणों से कर्म आत्म-सरोवर में गिरते हैं, आत्म-प्रदेशों से संबंधित होते हैं, उन्हें कर्मापतन कहते हैं। दोनों का आशय एक ही है।

अतिमुक्त कुमार के जीवन संबंधी अंतगडमून के इस वर्णन के अतिरिक्त भगवतीमूर्त के चतुर्थ उद्देशक में मुनि अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बड़ा सुन्दर विवेचन मिलता है। यहाँ भावस्वरूप होने में उसका उत्तेज किया जा रहा है—

तेषु कालेषु तेषु गमणेषु समणस्स भगवद्यो महावीरस्स अतेवासी अदमुत्ते णाम कुमारममणे पण्डभद्दण, जाव-विणीण। तए ण मे अदमुत्ते कुमारममणे षण्णया कयाइ महापुट्टिकापनि निव्वयमाणनि कक्कापडिग्गह-रथहरणमायाए वहिया सपट्टिए विहाराए। तए ण अदमुत्ते कुमारममणे वाह्य वट्ठमाण पाणद, पाणिता मट्टियाए पानि वधदं, वधित्ता 'पाविआ मे पाविआ मे' पाविणो विव पावमव पडिग्गह उदगमि इद्दु पव्वाहमाणे पव्वाहमाणे अभिरमदं, त च धेरा अदम्मु, जेणेर ममणे भगव महावीरे तेणैव उवागच्छद, उवागच्छित्ता एव वयामी—

एव एतु देवाणुणियाण अनेवामी अदमुत्ते णाम कुमारममणे भगव, से ण अते ! अदमुत्ते कुमारममणे कदाइ भवग्गहेहि निग्गिह्हिद, जाव अत करेहिद ?

अज्ञो ! नि ममणे भगव महावीरे ते धेरे एव वयामी—एवं एतु अज्ञो ! मम अज्ञोमी अदमुत्ते णाम कुमारममणे पण्डभद्दण, जाव-विणीण, मे ण अदमुत्ते कुमारममणे इमेण वेव भवग्गहेणैव सरहद, अरमणह, तुम्हे ण देवाणुणिया ! अदमुत्ते कुमारममणे अगिणाए मणिण्ह, अगिणाए उरणिह, अगिणाए अने ण ममणे विणिया देवाणुणिया करेह । अदमुत्ते ण कुमारममणे अकरे वेव,

उस काल और उस समय वाणारमी नगरी में काममहायन नामक उद्यान था। उस वाणारमी नगरी में अलक्ष नामक राजा था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर यावत् महायन उद्यान में पधारे। जन-परिपद् प्रभु-वन्दन को निकली, राजा अलक्ष भी प्रभु महावीर के पधारने की बात सुनकर प्रमत्त हुआ और कोणिक राजा के समान वह भी यावत् प्रभु की सेवा में उपासना करने लगा। प्रभु ने धर्मकथा कही।

तब अलक्ष राजा ने श्रमण भगवान् महावीर के पास 'उदायन' की तरह श्रमणदीक्षा ग्रहण की। विशेषता यह कि उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सिंहासन पर बिठाया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमणचारित्र्य का पालन किया यावत् विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

इस प्रकार "हे जवू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अतगड दगा के छट्ठे वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

द्विवेचन—प्रस्तुत सोलहवें अध्ययन में वाराणसी नगरी के अलक्ष नरेश के जीवन का उल्लेख किया गया है। अलक्ष नरेश भगवान् महावीर के चरणों में परम श्रद्धालु भक्त थे। इनकी प्रभु चरणों में निष्ठा एवं आस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये सूत्रकार ने चपा-नरेश कूणिक की ओर मकेंत किया है, जिसका वर्णन औपपातिक सूत्र में है।

"जहा उदायणे तहा निवसते" का अर्थ है—जिस प्रकार महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए।

उदायन राजा का वर्णन भगवतीसूत्र के शतक १३ उ. ६ में आया है। उसके अनुसार उदायन मिन्धु-सोवीर आदि सोलह देशों का स्वामी था।

एक दिन वह पौषघसाला में पौषघ करके बंठा हुआ था। धर्म-जागरण करते हुए उसे भगवान् महावीर की स्मृति आ गई। वह सोचने लगा—वह नगर, कानन धन्य है जहा भगवान् विहार करते हैं। वे राजा, आदि धन्य है जो भगवान् की वाणी सुनते हैं, उनकी उपासना करते हैं, अपने हाथ से उन्हें निर्दोष भोजन, वस्त्र, पात्र आदि देते हैं। मेरा ऐसा सीभाव्य कहाँ ? मुझे तो उन महाप्रभु के दर्शन करने का भी अवसर नहीं मिलता। चिन्तन की धारा ऊर्ध्वमुखी होने लगी। उसने सोचा—यदि भगवान् मेरी नगरी में पधार जाएँ तो मैं उनकी सेवा करूँ, और साथ ही इस अंगार ससार को छोड़कर दीक्षित हो जाऊँ।

उस समय भगवान् चम्पा के पूर्णभद्र उद्यान में विराजमान थे। वीतभयपुर और चम्पा में सात सौ कोम का अन्तर था, पर करुणासागर भक्तवत्सल भगवान् महावीर ने अपने भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये चम्पा से प्रस्थान कर दिया और धीरे-धीरे यात्रा करते हुए वे उदायन की नगरी में पधार गये। भगवान् के पधारने के शुभ समाचार पाकर उदायन आनन्द-विभोर हो उठे। बड़े समारोह के साथ राजा, रानी और कुमार सब भगवान् के चरणों में उपस्थित हुए। धर्म-कथा सुनी, भगवान् की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर उदायन को बंराग्य हो गया। अपना उत्तराधिकारी निर्दिष्ट करने के लिये वह वापस महलों में आया। शासन का सारा दायित्व धर्मोच कुमार को

सत्तमो वग्गो

१-१३ अघ्ययन

नंदा आदि

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगड्ढसाणं छट्ठस्स वगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वगस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एयं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगड्ढसाणं सत्तमस्स वगस्स तेरस अज्जभयणा पण्णत्ता, तं जहा—

सगह्णो-गाहा

१. नंदा तह २. नंदवई, ३. नंदुत्तर ४. नंदिसेणिया चेव ।

५. मरता ६. सुमरता ७. महमरता ८. मरवेया य अट्टमा ॥ १ ॥

९. भद्रा य १०. सुभद्रा य, ११. मुजाया १२. सुमणाइया ।

११. भूयदिष्णा य बोधवा, सेणिय नज्जाण नामाई ॥ २ ॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगड्ढसाणं सत्तमस्स वगस्स तेरस अज्जभयणा पण्णत्ता, पडमस्स णं भंते ! अज्जभयणस्स अंतगड्ढसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एयं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राय, वण्णघो । तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नाम देवो होत्था-वण्णघो । सामी समीसदे, परिसा निग्गया । तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा हट्ठुट्ठा कोडुं बियपुरिते सद्दावेद, सद्दावेत्ता जाणं दुक्कई । जहा पउमायई जाव^१ एकारस अंगाड अहिज्जिता घोस वासाई परियाघो जाव^२ सिद्धा ।

एव तेरस वि देवोओ नंदा-गमेण नेयध्वाओ ।

छट्ठे वगं का अर्थं मुननें के अनन्तर अर्थं जंबू स्वामी अर्थं मुधर्मा स्वामी से निवेदन करते मने—भगवन् ! यावन् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड्ढसा के छट्ठे वगं का जो अर्थं बनाया है, उनका मैंने श्रवण कर लिया है, अब श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगड्ढसा के सातवें वगं का जो अर्थं कहा है उसे मुनाने की कृपा करे ।

उमके उत्तर में मुधर्मा स्वामी ने कहा—सातवें वगं के तेरह अघ्ययन कहे गये हैं, जो इन प्रकार हैं—

गाथार्थं—(१)नंदा, (२) नन्दवती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दश्रेणिका, (५) मरता, (६) मुमरता, (७) महामरता, (८) मरवेवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) मुजाता, (१२) सुमनायिका, (१३) भूयदत्ता । ये मत्र श्रेणिक राजा की रानिया थी ।" ये सब श्रेणिक राजा की पत्नियों के नाम हैं ।

सत्तमो वग्गो

१-१३ अर्धपयन

नवा आदि

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स प्रथमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं एखु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—
सगहणी-गाहा

१ नंवा तह २. नंदवई, ३. नंदुत्तर ४. नंदिसेणिया चेव ।

५. मरता ६. मुमरता ७. सहमरता ८. मरुवेवा य अट्टमा ॥ १ ॥

९. भद्दा य १०. मुभद्दा य, ११. मुजाया १२. मुमणाइया ।

११. नूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणिय नज्जाण नामाई ॥ २ ॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पट्टमस्स णं भंते ! अज्झयणास्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं एखु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसितए चेइए । सेणिए राया, यण्णघो । तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंवा नाम वेगे—...णमो । सामी समीसडे, परिता निगया ।
...जुरिसे सद्दावेड, सद्दावेत्ता जाणं बुद्धइ ।
...परियाघो जाव^३ सिद्धा ।

एव तरम वि देवीओ नंवा-गमेण नेयव्वाघो ।

छट्ठे वगं का अर्थं मुनने के अनन्तर प्रायं जंबू स्वामी प्रायं मुधर्मा स्वामी से निर्देदन करने लगे—नयवत् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगडदशा के छट्ठे वगं का जो अर्थ बताया है, उसका मैंने श्रवण कर लिया है, अब श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अष्टम अंग अंतगडदशा के गानवे वगं का जो अर्थ कहा है उसे मुनाने की कृपा करें ।

उसके उत्तर में मुधर्मा स्वामी ने कहा—गानवे वगं के तेरह अर्धपयन कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथायं—(१)नन्दा, (२) नन्दवतो, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दधरेणिका, (५) मरता, (६) मुमरता, (७) सहमरता, (८) मरुवेवा, (९) भद्दा, (१०) मुभद्दा, (११) मुजाया, (१२) मुमणाइया, (१३) नूयदिता । ये सब अर्धनिक रात्रा को रातियां थीं ।" वे सब अर्धनिक रात्रा को रातियों के नाम हैं ।

अठमो वग्गो

प्रथम अघ्ययन

काली

उत्क्षेप

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अघ्ययनत्ते, अट्टमस्स वग्गस्स के अट्टे पणत्ते ?

एवं खलु जंजू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्टमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पणत्ता तं जहा—
संगहणी गाहा

- (१) काली (२) सुकाली (३) महाकाली, (४) कण्हा (५) सुकण्हा (६) महाकण्हा ।
(७) वीरकण्हा य वोधक्खा, (८) रामकण्हा तहेय य ।
(९) पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी (१०) महासेणकण्हा य ॥१॥

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पणत्ता, पट्टमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्टे पणत्ते ?

एवं खलु जंजू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था । पुण्णमहे चेइए । तस्य णं चंपाए नयरीए कोणिए राया, वण्णओ । तस्य णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुहलकमाउया, कालो नामं वेवी होत्था, वण्णओ । जहा नंदा जाव' सामाइयमाइयाइं एक्कारत्त अंगाइं अहिज्जइ । वहाँहि चउत्तय जाव' अण्णाणं भावेमाणे विहरइ ।

श्रीजवू स्वामी ने ध्यायं मुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—“भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने आठवें अंग अंतगडदसा के आठवें वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?”
श्री मुधर्मा स्वामी ने कहा—“हे जवू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु महावीर ने आठवें अंग अंतगडदसा के आठवें वर्ग के दस अघ्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

- गाथार्थ—(१) काली, (२) सुकाली, (६) महाकाली, (४) कण्णा, (५) सुकण्णा,
(६) महाकण्णा, (७) वीरकण्णा, (८) रामकण्णा, (९) पितुगेनकण्णा और (१०) महासेनकण्णा ।

श्री जवूस्वामी ने पुनः प्रश्न किया—“भगवन् ! यदि आठवें वर्ग के दस अघ्ययन कहे हैं तो प्रथम अघ्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?”

ध्यायं मुधर्मा स्वामी ने कहा—“हे जवू ! उग काल और उग समय चम्पा नाम की नगरी

द्वितीय अध्यायन

सुकाली

सुकाली का कनकावली तप

५—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरो । पुण्णभद्दे चेइए । कोणिए रामा । तस्य णं सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चत्तमाउया सुकाली नामं वेवो होत्वा । जहा कालो तथा सुकाली वि निक्खंता जाव^१ बहूहि जाव^२ तवोकम्मोहि अण्णाणं भावेमाणो विहरइ ।

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेण्वेव अज्जचंदणा अज्जा जाव^३ इच्छामि णं अज्जाओ । तुब्भोहि अम्भण्णायामा समाणो कणगावली-तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए । एवं जहा रयणावली तथा कणगावली वि, नवरं—तिसु ठाणेषु अट्टमाइ करेइ, जहिं रयणावलीए छट्ठाइ । एकए परिवाडीए संबच्छरो, पंच मासा, वारस य अहोरत्ता । चउण्हं पंच वरिसा नव मासा अट्टारस विवसा । सेसं तहेव । नव वासा परियाओ जाव^४ सिद्धा ।

उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी । वहाँ पूर्णभद्र उद्यान था और कोणिक राजा वहाँ राज्य करता था । उस नगरी में श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता सुकाली नाम की रानी थी । काली की तरह सुकाली भी प्रव्रजित हुई और बहुत से उपवास आदि तपो से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

फिर वह सुकाली आर्या अन्यादा किसी दिन आर्य-चन्दना आर्या के पास आकर इस प्रकार बोली—“हे आर्ये ! आपकी आज्ञा हो तो मैं कनकावली तप अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ ।” आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली के समान सुकाली ने कनकावली तप का आराधन किया । विदोषता इसमें यह थी कि तीनों स्थानों पर अष्टम-तेले किये जब कि रत्नावली में षष्ठ-तेले किये जाते हैं । एक परिपाटी में एक वर्ष, पाँच मास और बारह अहोरात्रिया लगती हैं । इस एक परिपाटी में ८८ दिन का पारणा और १ वर्ष, २ मास १४ दिन का तप होता है । चारों परिपाटी का काल पाँच वर्ष, नव मास और अठारह दिन होते हैं । दोष वर्णन काली आर्या के समान है । नव वर्ष तक चारित्र्य का पालन कर यावत् मित्र, बुद्ध और मुक्त हो गई ।

विवेचन—कनकावली तप और रत्नावली तप में इतना ही भेद है कि रत्नावली में जहाँ आठ तेले तथा ३४ तेले किये जाते हैं, वहाँ कनकावली तप में आठ तेले और ३४ तेले किये जाते हैं । दोष तप के दिन बराबर हैं । पारणे में भी समानता है । कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष पाँच मास और १२ दिन लगते हैं । इस प्रकार चारों परिपाटियों के ५ वर्ष ९ मास और १८ दिन होते हैं । कनकावली की प्रथम परिपाटी की रूपरेखा अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित यत्र द्वारा स्पष्ट होती है ।

- | | |
|----------------------|--------------------|
| १. वर्ष ५, मूत्र ५-६ | २. वर्ष ५, मूत्र ६ |
| ३. वर्ष ८, मूत्र ४ | ४. वर्ष ५, मूत्र ६ |

त्याग किया, तोमरी मे लेपमात्र का भी त्याग किया, पोषो में उपवासां का पारणा प्रायश्चित्त तप से किया ।

सुझावा-सिंह निकीलियं

१	१
२	२
३	३
४	४
५	५
६	६
७	७
८	८
९	९
१०	१०
११	११
१२	१२
१३	१३
१४	१४
१५	१५
१६	१६
१७	१७
१८	१८
१९	१९
२०	२०
२१	२१
२२	२२
२३	२३
२४	२४
२५	२५
२६	२६
२७	२७
२८	२८
२९	२९
३०	३०
३१	३१
३२	३२
३३	३३
३४	३४
३५	३५
३६	३६
३७	३७
३८	३८
३९	३९
४०	४०
४१	४१
४२	४२
४३	४३
४४	४४
४५	४५
४६	४६
४७	४७
४८	४८
४९	४९
५०	५०
५१	५१
५२	५२
५३	५३
५४	५४
५५	५५
५६	५६
५७	५७
५८	५८
५९	५९
६०	६०
६१	६१
६२	६२
६३	६३
६४	६४
६५	६५
६६	६६
६७	६७
६८	६८
६९	६९
७०	७०
७१	७१
७२	७२
७३	७३
७४	७४
७५	७५
७६	७६
७७	७७
७८	७८
७९	७९
८०	८०
८१	८१
८२	८२
८३	८३
८४	८४
८५	८५
८६	८६
८७	८७
८८	८८
८९	८९
९०	९०
९१	९१
९२	९२
९३	९३
९४	९४
९५	९५
९६	९६
९७	९७
९८	९८
९९	९९
१००	१००

अथवा अथ [एक सितारी का नाम १ नाम, ७ दिन
 एक सितारी का नाम २ नाम, १२ दिन
 एक सितारी के नामों १ नाम, ४ दिन
 एक सितारी के नामों १ नाम, ८ नाम, १६ दिन
 एक सितारी के नामों १ नाम, १६ दिन
 एक सितारी के नामों ११
 एक सितारी के नामों १११

पञ्चम अध्यायन

सुकृष्णा

सुकृष्णा का निम्नप्रतिमा आराधन

८—एवं सुकृष्णा वि, नवरं—सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जिता णं विहरइ ।

पढमे सत्तए एक्केवकं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केवकं पाणयस्स ।

बोच्चे सत्तए बो-बो भोयणस्स बो-बो पाणयस्स पडिगाहेइ ।

तच्चे सत्तए तिण्णि-तिण्णि दत्तोओ भोयणस्स, तिण्णि-तिण्णि दत्तोओ पाणयस्स ।

घउरथे सत्तए चत्तारि-चत्तारि दत्तोओ भोयणस्स, चत्तारि-चत्तारि दत्तोओ पाणयस्स ।

पचमे सत्तए पंच-पंच दत्तोओ भोयणस्स, पंच-पंच दत्तोओ पाणयस्स ।

एद्धे सत्तए छ-छ दत्तोओ भोयणस्स, छ-छ दत्तोओ पाणयस्स ।

सत्तमे सत्तए सत्त-सत्त दत्तोओ भोयणस्स, सत्त-सत्त दत्तोओ पाणयस्स पडिगाहेइ ।

एवं एतु एयं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगुणपण्णाए रातिविर्ण्ह एणेण य एण्णउएण भिक्खा-
सएण प्रहामुत्तं जाव' पाराहेत्ता तेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणे
अज्जं बरइ नमंसइ, बरित्ता नमंसित्ता एवं वयासो—

इत्थामि णं अज्जओ ! तुभेहि अरभण्णयाया समायो अट्टमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्तानं
विहरेसए ।

प्रहामुह देवाणुणिए ! मा पडिअंयं करेहि ।

कासी धारों की तरह धारों सुकृष्णा ने भी दीक्षा ग्रहण की । विभेय यह कि वह मत्त-मत्तमिमा
निम्नप्रतिमा ग्रहण करके विचरने लगी, जो इन प्रकार है—

प्रथम मत्तक में एक दिन भोजन की घोर एक दत्ति पानी को ग्रहण की । द्वितीय मत्तक में दो
दिन भोजन की घोर दो दिन पानी को ग्रहण की । तृतीय मत्तक में तीन दत्ति भोजन की घोर तीन
दिन पानी को ग्रहण की । चतुर्थ मत्तक में चार दत्ति भोजन की घोर चार दत्ति पानी को ग्रहण की ।
पाचम मत्तक में पांच दत्ति भोजन की घोर पांच दत्ति पानी को ग्रहण की । छठे मत्तक में छह दत्ति
भोजन की घोर छह दत्ति पानी को ग्रहण की । सातम मत्तक में सात दत्ति भोजन की घोर सात
दत्ति पानी को ग्रहण की ।

इन प्रकार जिनके (६३) रात-दिन में एक गो दिवानडे (३२६) मिशा की दानिया होती
है । सुकृष्णा धारों ने सुकृष्णा वि'इ क प्रत्युमार इनो 'मत्तमत्तमिमा' निम्नप्रतिमा तब की सम्पद

पढमे अट्टए एक्केवकं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केवकं पाणयस्स जाव [वत्ति पडिगाहेइ],
अट्टमे अट्टए अट्टट्ट भोयणस्स पडिगाहेइ, अट्टट्ट पाणयस्स ।

एयं खलु एयं अट्टट्टमियं भिक्खुपडिमं चउसट्टीए रात्तिदिएहि दोहि य अट्टासीएहि भिक्खासएहि
अहामुत्तं जाव^१ आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जिता णं विहरइ—

पढमे नवए एक्केवकं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केवकं पाणयस्स जाव [वत्ति पडिगाहेइ]
नवमे नवए नव-नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, नव-नव पाणयस्स ।

एयं खलु एयं नवनवमियं भिक्खुपडिमं एक्कासीतिए राइंदिएहि चउहि य पंचुत्तरेहि भिक्खा-
सएहि अहामुत्तं जाव^२ आराहेत्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जिता णं विहरइ—

पढमे दसए एक्केवकं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केवकं पाणयस्स जाव [वत्ति पडिगाहेइ] ।
दसमे दसए दस-दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, दस-दस पाणयस्स ।

एयं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अट्टछट्टेहि य भिक्खासएहि
अहामुत्तं जाव^३ आराहेइ, आराहेत्ता वहाँहि चउत्थ-छट्टट्टम-दसम-दुवालसेहि भासउमासखमणेहि
विधिहेहि तवोकम्मेहि अप्पाणं भायेमाणो विहरइ ।

तए णं सा मुक्कहा अज्जा तेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं जाव^४ सिद्धा । निक्खेयओ ।

आर्यचन्दना आर्या मे आना प्राप्त होने पर आर्या मुक्कणा देवी अष्ट-अष्टमिका नामक
भिक्षुप्रतिमा को धारण कर के विचरने लगी । अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

पहले आठ दिनों में आर्या मुक्कणा ने एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण
की । दूसरे अष्टक में अन्न-पानी की दो-दो दत्तिया ली । इसी प्रकार प्रथम से तीसरे में तीन-तीन,
चौथे में चार-चार, पाचवें में पाच-पाच, छट्ठे में छह-छह, सातवें में सात-सात और आठवें में आठ-
आठ अन्न-जल की दत्तिया ग्रहण की ।

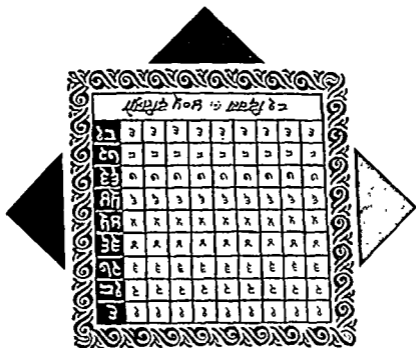
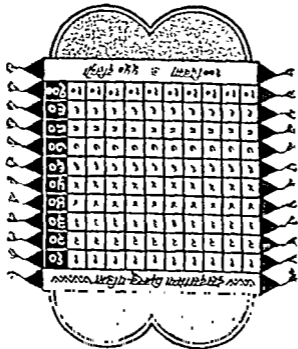
इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना में ६४ दिन लगे और २८८ भिक्षाएं ग्रहण
की गईं । इस भिक्षु-प्रतिमा की गृथोक्त पद्धति से आराधना करने के अनन्तर आर्या मुक्कणा ने
नव-नवमिसानामक भिक्षु-प्रतिमा की आराधना आरम्भ कर दी ।

नव-नवमिसा भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करते समय आर्या मुक्कणा ने प्रथम नवरु मे प्रतिदिन
एक एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की । इसी प्रकार आगे प्रथमः एक-एक
दत्ति बढ़ाने टूट नौवें नवरु मे अन्न जल की नौ-नौ दत्तिया ग्रहण की ।

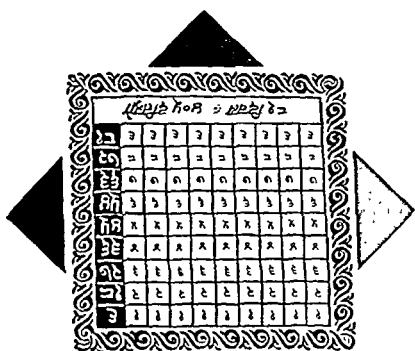
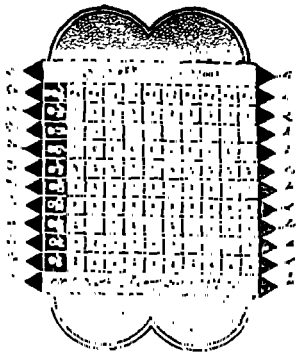
की सा
प्रथम
धारभ की ।

१-२-३ वर्ष ८, पुष २

४. वर्ष ८, पुष ६



A decorative banner at the bottom of the page containing a South Indian script.



ᠠᠨᠠᠭᠤ ᠬᠣᠨ ᠰᠢᠨᠠᠵᠤ ᠰᠢᠨᠠᠵᠤ

पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके
 नवकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके
 नीला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया करके सर्वकामगुणयुक्त
 पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके
 नवकामगुणयुक्त पारणा किया करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया ।

इस प्रकार यह लघु (क्षुद्र-क्षुल्लक) सर्वतोभद्र तप-कर्म को प्रथम परिपाटी तीन माह और
 दस दिनो में पूर्ण होती है । इसको सूत्रानुसार सम्यग् रीति (विधि) से आराधना करके आर्या महा-
 कृष्णा ने इसकी दूसरी परिपाटी में उपवास किया और विगय रहित पारणा किया । जैसे रत्नावली
 तप में चार परिपाटिया ब्रताई गई वैसे ही इस में भी होती है । पारणा भी उसी प्रकार समझना
 चाहिये । इस की प्रथम परिपाटी में पूरे ती दिन लगे, जिसमें पच्चीस दिन पारणा के और ७५ दिन
 उपवास के होते हैं । चारों परिपाटियों का सम्मिलित काल एक वर्ष, एक मास और दस दिन हुआ ।

विवेचन—“खुड्डिय सर्वतोभद्र पडिम” में क्षुल्लक शब्द महद् की अपेक्षा से है । सर्वतोभद्र
 तप दो प्रकार का है, एक महद् एक लघु । यह लघु है इस बात को प्रकट करने के लिये क्षुल्लक
 शब्द का प्रयोग किया गया है । गणना करने पर जिसके अंक सम अर्थात् बराबर हों, विषम न हो,
 जिधर से गणना की जाए उधर से ही समान हो, उसे सर्वतोभद्र कहते हैं । इसमें एक से लेकर पाच
 अंक दिये जाते हैं, चारों ओर जिधर से चाहे गिन लें, सभी ओर १५ ही संख्या होती है । एक से
 पाच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी संख्या होने से इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है । यह
 प्रस्तुत यत्र से स्पष्ट होती है—



अष्टम अध्यायन

रामकृष्णा

रामकृष्णा का भद्रोत्तरप्रतिमा तप

१२—एवं रामकृष्णा वि. नवरं—भद्रोत्तरपत्रिमं उरुतपत्रिजसा णं विहरइ, तं तहा—

बुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । घोइसमं करेइ; करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । प्रद्वारसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । योसइमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । प्रद्वारसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । वोसइमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । बुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । घोइसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । योसइमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । बुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । चोइसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । प्रद्वारसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । घोइसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । भद्वारसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । वोसइमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । बुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । प्रद्वारसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । वोसइमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । बुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । प्रद्वारसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । घोइसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ । सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्यकामगुणियं पारेइ ।

एषकाए कालो छम्मासा वोस य दिवसा । चउण्हं कालो बो वरिसा बो मासा बोस य दिवसा । सेसं तहेव जहा काली जाव' सिद्धा ।

भार्या काली की तरह भार्या रामकृष्णा का भी वृत्तान्त समझना चाहिए । विशेष यह कि रामकृष्णा भार्या भद्रोत्तर प्रतिमा अगीकार करके विचरण करने लगी, जो इस प्रकार है—

पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया ।

यह प्रथम लता हुई ।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया ।

यह दूसरी लता हुई ।

नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया ।

यह तीसरी लता पूर्ण हुई ।

नैवम अध्ययन

पितृसेनकृष्णा

पितृसेनकृष्णा का मुक्तावली तप

१३—एयं-पितृसेनकृष्णा वि, नवरं—मुक्तावली तवोकम्भं उवसंपज्जिता णं विहरा
तं जह्वा—

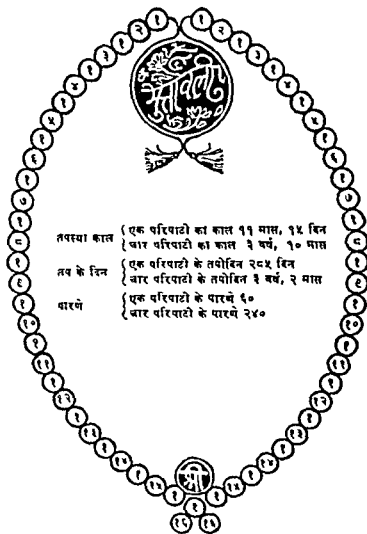
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । चोइसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । सोन्नसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । बायोसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । चउयीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । छुध्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । अट्ठ्वाधोसइमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । चउत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।
चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।

एयं तहेव मोत्तारेइ जाव चउरथं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।

एवकाए कालो एवकारस मात्ता पण्णरस य दिवसा । चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मात्ता ।
सेत्त जाव सिद्धा ।

पितृसेनकृष्णा ता चरित भी धार्या वाणी को तरह ममभजा । विशेष यह कि पितृसेनकृष्णा
ने मुक्तावली तप त्रयोवार किया, जो दस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके देना किया, करके सर्वकाम-
गुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके देना किया,
करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया,



शुक्लावली तप
 का
 स्थापना-ग्रन्थ

एक आयविल किया, करके उपवास किया, करके दो आयविल किये, करके उपवास किया, करके तीन आयविल किये, करके उपवास किया, करके चार आयविल किये, करके उपवास किया, करके पांच आयविल किये, करके उपवास किया, करके छह आयविल किये, करके उपवास किया ।

ऐसे एक एक की वृद्धि से आयविल बढ़ाए । बीच-बीच में उपवास किया, इस प्रकार सो आयविल तक करके उपवास किया ।

इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने इस 'वर्द्धमान-आयविल' तप की आराधना चौदह वर्ष, तीन माह और बीस अहोरात्र की अवधि में मूदानुसार विधिपूर्वक पूर्ण की । आराधना पूर्ण करके आर्या महासेनकृष्णा जहाँ अपनी गुरुणी आर्या चन्दनवाला थी, वहाँ आई और चन्दनवाला को वदना-नमस्कार करके, उनकी आज्ञा प्राप्त करके, बहुत से उपवास आदि से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

इस महान् तपतेज से महासेनकृष्णा आर्या शरीर से दुबल हो जाने पर भी अत्यन्त देदीप्यमान लगने लगी । एकदा महासेनकृष्णा आर्या को स्कन्दक के समान धर्म-चिन्तन उत्पन्न हुआ । आर्यचन्दना आर्या से पूछकर यावत् सलेखना की और जीवन-मरण की आकांक्षा से रहित होकर विचरने लगी ।

महासेनकृष्णा आर्या ने आर्यचन्दना आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, पूरे सत्रह वर्ष तक सयमधर्म का पालन करके, एक मास की सलेखना से आत्मा को भावित करके माठ भक्त प्रनशन को पूर्णकर यावत् जिस कार्य के लिये संयम लिमा था उसकी पूर्ण आराधना करके अन्तिम श्वास-उच्छ्वास से सिद्ध बुद्ध हुई ।

गार्थार्थ—एव श्रेणिक राजा की भार्याओं में से पहली काली देवी का दीक्षाकाल आठ वर्ष का, तत्पश्चात् प्रमदाः एक-एक वर्ष की वृद्धि करते-करते दसवी महासेनकृष्णा का दीक्षाकाल सत्तरह वर्ष का जानना चाहिए ।

विशेषण—“आयविलवद्धमाण”—आयविल-वर्द्धमान—वह तप है जिनमें आयविल प्रमदाः बढ़ाया जाता है । इस तप की आराधना में १४ वर्ष ३ मास और २० दिन लगते हैं ।

पिछले तपों का परिशीलन करने से पता चलता है कि सूत्रकार ने तपों की जो दिन-संख्या लिखी है, उगमें तपस्या के दिन और पारण के दिन, इस प्रकार सभी दिन सकलित किए जाते हैं । यदि उसी पद्धति का अनुसरण किया जाए तो इसका काल-मान १४ वर्ष ३ माह और २० दिन कैसे हो सकता है ? समाधान यही है कि इसमें पारण का कोई दिन नहीं आता । इसके दो कारण हैं—प्रथम तो सूत्रकार जैमिणीय पारण का निर्देश करते चने आ रहे हैं, वैसे यहाँ पर सूत्रकार ने निर्देश नहीं किया, दूसरा यदि पारण के सब दिन भी साथ में सम्मिलित कर दिए जाएँ तो इस तप की दिनसंख्या १८ वर्ष ३ मास २० दिन न रहकर १४ वर्ष १० दिन हो जाती है । अतः यही समझना ठीक है कि आर्या महासेनकृष्णा ने १४ वर्ष ३ मास और २० दिन तक तप किया, बीच में कोई पारणा नहीं किया । आयविल-वर्द्धमान-तप का स्थापनायत्र इस प्रकार है—

आगम में वर्णित विशेषनाम

संकेत—वर्ग / सूत्र

१. तीर्थंकरविशेष—

- | | |
|--|-----|
| १. अमम तीर्थंकर | ५/३ |
| २. अरिष्टनेमि भगवान्—वर्ग ३ से वर्ग ५ तक | |
| ३. महावीर स्वामी—वर्ग ६ से वर्ग ८ तक | |

२. आगम में वर्णित (जहा) शब्द से गृहीत व्यक्तित्वविशेष—

- | | |
|------------------------|----------------|
| १. अभयकुमार | ३/१३ |
| २. उदायन | ६/१६ |
| ३. गगदत्त | ६/१ |
| ४. गौतमस्वामी | ३/६, ६/१२ |
| ५. देवानन्दा ब्राह्मणी | ३/६ |
| ६. महाबल कुमार | १/७, ३/१८ |
| ७. मेघकुमार | १/८, ३/१८ |
| ८. स्कन्दकमुनि | १/६, ६/१, ८/१४ |

३. आगम विशेष—

- | | |
|-------------------------------------|-----------|
| १. उवामगदना (उपासकदनाग) | १/२ |
| २. पण्णत्ति (प्रज्ञप्ति-भगवतीमूत्र) | ६/१, ६/१५ |

४. प्रपुषत व्यक्तित्वविशेष—मूनि आदि

- | | |
|--|------|
| १. धनिमुत्तकुमार भ्रमण
(जिसने देवकी को भविष्य कहा था) | ३/६ |
| २. गौतम स्वामी | ६/१५ |
| ३. चन्दना साध्वी | ८/१ |
| ४. यक्षिणी साध्वी | ५/६ |

५. देव—विशेष

- | | |
|--------------------|------|
| १. मुद्गरपानि यक्ष | ६/२ |
| २. वैश्रमण बुधेर | १/५ |
| ३. हरिपंगमेयी | ३/१० |

६. क्षत्रियवर्ण के व्यक्तिविशेष—

राजा	
१. अन्धकवृष्णि	१/७
२. अलक्षराजा	६/१६
३. श्रीकृष्ण वामुदेव	१/६
४. कोणिकराजा	८/१
५. जितरात्रु	३/१
६. प्रचुम्न	४/१
७. विजयराजा	६/१५
८. वमुदेवराजा	३/४
९. बलदेव	३/२८
१०. समुद्रविजय	४/१
११. श्रेणिकराजा	६/१
रानियाँ—	
१. अन्धकवृष्णि-पत्नी	१/७
२. काली	८/१-६
३. कृष्ण	८/७
४. गाधारी	५/१
५. गौरीदेवी	५/१
६. चेल्लणा	६/२
७. जाम्बवती	४/१
८. देवकी	३/७
९. धारिणी	१/७
१०. नन्दश्रेणिका	७/१
११. नन्दा	७/१
१२. नन्दावती	७/१
१३. नन्दोत्तरा	७/१
१४. पद्मावती	५/१
१५. पितृमेनकृष्णा	८/१३
१६. बनदेवपत्नी	३/२८

५. कर्कतनरत्न	३/१३	१४. लोहिताशरत्न	३/१
६. जातरूपरत्न	३/१३	१५. कम्परत्न	३/१
७. ज्योतिरसरत्न	३/१३	१६. चंद्रमूरत्न	१/५, ३/१
८. पद्मराग	३/१३	१७. स्फटिकरत्न	३/१
९. पुत्रकरत्न	३/१३	१८. सोमधिकरत्न	३/१३
१०. मणि	१/५	१९. हृगभंरत्न	३/१३
११. मसारगल्लरत्न	३/१३		
१२. रजतरत्न	३/१३	३०. दोषविशेष—	
१३. रिष्टरत्न	३/१३	१. भरतक्षेत्र (भारतवर्ष कहा है)	१/६

स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुसूच ही उनका व्यक्तित्व विराट् व प्रभावशाली था।

एक बार इन्द्रभूति सोमिल घ्रायं के निमन्त्रण पर पावापुरी में होने वाले यज्ञोत्सव में गए थे। उगी श्रवसर पर भगवान् महावीर भी पावापुरी के बाहर महासेन उद्यान में पधारे हुए थे। भगवान् की महिमा को देखकर इन्द्रभूति उन्हें पराजित करने की भावना से भगवान् के समवसरण में घ्रायं, किन्तु वह स्वयं ही पराजित हो गये। अपने मन का सदाय दूर हो जाने पर वह अपने पाँच-गो गिष्यो महिष भगवान् के गिष्य हो गये। गौतम प्रथम गणधर हुए।

घ्रागमां में व घ्रागमेत्तर साहित्य में गौतम के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा मिलता है।

इन्द्रभूति गौतम दीक्षा के समय ५० वर्ष के थे। ३० वर्ष साधु-पर्याय में और १२ वर्ष वैश्या-पर्याय में रहे। अपने निर्वाण के समय अपनी गण मुधर्मा को सोपकर गुण-सितरु चंद्र्य में माणिक्र घनगन करके भगवान् के निर्वाण में १२ वर्ष बाद ६२ वर्ष की अवस्था में निर्वाण को प्राप्त हुए।

शास्त्रों में गणधर गौतम का परिचय दस प्रकार का दिया गया है—वे भगवान् के ज्येष्ठ गिष्य थे। सात हाथ ऊँचे थे। उनके शरीर का मन्थान और सहनन उत्कृष्ट प्रकार का था। मुखों रेखा के समान गौर थे। उग्र तपस्वी, महा तपस्वी, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचारी और मक्षिप्त विपुल-तंत्रोन्नेयवा मयप्र थे। शरीर में घनामक थे। चौदह पूर्वंधर थे। मति, श्रुत, श्रवधि और मन-पर्याय—धार ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षरमभिप्राती थे, वे भगवान् महावीर के समीप में उाकुड घासन में नीचा गिर कर के बैठते थे। ध्यान-मुद्रा में स्थिर रहते हुए मयम और तप में प्रात्मा को भावित करने हुए विचरते थे।

(२) वृष्ण

वृष्ण वामुदेव। माता का नाम देवकी, पिता का नाम वामुदेव था। वृष्ण का जन्म अपने मामा रग की बारा में मथुरा में हुआ था।

जराकट के उपद्रवों के कारण श्रीवृष्ण ने ब्रज-भूमि को छोड़ कर सुदूर सोराष्ट्र में जाकर डारहा की रचना की।

श्रीवृष्ण भगवान् नेनिनाथ के परम भक्त थे। नरिष्ण में वह प्रथम नाम के तीर्थंकर होने। ब्रज-साहित्य में, सरहट और प्राहट उभय भाषाओं में श्रीवृष्ण का जीवन विस्तृत रूप में मिलता है।

डारहा का विनाश हो जाने पर श्रीवृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथों में हुई। श्रीवृष्ण का जीवन महान् था।

(३) सोमिक

राजा नरिष्ण की राती बेलाया का पुत्र, जयदम की राजधानी जयरा नगरी का घडिगि। बरवान् महावीर के परम भक्त।

कावट राजा एक नरिष्ण राजा है। बेलायमा में घनक मराना पर उगारा घनेक प्रकार में जन्म पाया है।

जमालि के माता-पिता उमको उसके संकल्प से हटा नहीं सके। अपनी आठ पत्नियों का त्याग करके उसने पाँच-सौ क्षत्रिय कुमारों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली।

जमालि ने भगवान् के सिद्धान्त-विरुद्ध प्ररूपणा की थी।

(७) जितशत्रु राजा

शत्रुको जीतने वाला। जिस प्रकार बौद्ध जातकों में प्रायः ब्रह्मदत्त राजा का नाम आता है, उसी प्रकार जैन-ग्रन्थों में प्रायः जितशत्रु राजा का नाम आता है। जितशत्रु के साथ प्रायः धारिणी का भी नाम आता है। किसी भी कथा के प्रारम्भ में किसी न किसी राजा का नाम बतलाना, कथाकारों की पुरातन पद्धति रही है।

इस नाम का भले ही कोई राजा न भी हो, तथापि कथाकार अपनी कथा के प्रारम्भ में इस नाम का उपयोग करता है। वैसे जैन-साहित्य के कथा-ग्रन्थों में जितशत्रु राजा का उल्लेख बहुत आता है। निम्नलिखित नगरों के राजा का नाम जितशत्रु बताया गया है—

नगर	राजा
१. वाणिज्य ग्राम	जितशत्रु
२. चम्पा नगरी	"
३. उज्जयिनी	"
४. सर्वतोभद्र नगर	"
५. मिथिला नगरी	"
६. पाचाल देग	"
७. धामलकम्पा नगरी	"
८. गावत्थी नगरी	"
९. वाणारमी नगरी	"
१०. धालभिया नगरी	"
११. पोनामपुर	"

(८) धारिणी देवी

श्रेष्ठिक राजा की पटरानी थी। धारिणी का उल्लेख प्रागमों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

महान् भारतीय नाटकों में प्रायः राजा की सबसे बड़ी रानी के नाम के प्रागे 'देवी' विशेषण लगाया जाता है, जिसका अर्थ होता है रानियों में सबसे बड़ी अभिषिक्त रानी, अर्थात्—पटरानी।

राजा श्रेष्ठिक के अनेक रानियाँ थीं, उनमें धारिणी मुख्य थी। इसीलिए धारिणी के प्रागे 'देवी' विशेषण लगाया गया है। देवा का अर्थ है—पूज्या।

मैपटुमार इसी धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

भगवान् ने पूर्वभक्तों का स्मरण करते हुए मगध की पूर्ति करने का उपदेश दिया, जिनके पथ मुनि मगध में स्थित हो गया।

एक मास की मनेमना की। मन्त्राधिकारि विमान में देवस्वयं में उत्पन्न हुआ। महाविदेहस्य विमान होगा।

(११) स्कन्दक मुनि

स्कन्दक मन्वन्तो श्रावन्तो नगरो के रहने वाले महाभक्ति परिव्राजक का शिष्य था और शीतल स्वामी का पूर्व मित्र था। भगवान् महावीर के शिष्य विष्णुपति निर्धन्व के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका, फलतः श्रावन्तो के नागा भ्रात्र मुना कि भगवान् महावीर कनकना नगर के बाहर छत्र-पलाश उद्यान में पधारें है, तो स्कन्दक भी भगवान् के पास जा पहुँचा। धनता गणधान मिलने पर वह वहीं पर भगवान् का शिष्य हो गया।

स्कन्दक मुनि ने स्वयंसेवा के पात्र रहकर ११ वर्षों का अध्ययन किया।

विष्णु की १२ प्रतिमाओं को भक्त से गाधना की, धाराधना की।

गुणरत्नसवत्सर तप किया। शरीर दुर्बल, क्षीण और भ्रष्ट हो गया। अन्त में राजगृह के समीप विपुल-गिरि पर जाकर एक मास की मनेमना की। काल करके १२ वें देवलोके में गया। वहाँ से महाविदेहवास से सिद्ध होगा।

स्कन्दक मुनि की दीक्षा-पर्याय १२ वर्ष की थी।

(१२) सुधर्मा स्वामी

यं कोस्लाग सनिवेश के निवासी अग्निवेश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता धम्मिल थे और माता भद्रिका थी। पाच सौ छात्र इनके पास अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था में शिष्यों के साथ प्रव्रज्या ली। बयालीस वर्ष पर्यन्त छत्रावस्था में रहे। महावीर के निर्वाण के बाद चारह वर्ष व्यतीत होने पर केवली हुए और छठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे।

श्रमण भगवान् के सर्वे गणधरो में सुधर्मा दीर्घजीवी थे, अतः अग्र्यान्व गणधरो ने अपने-अपने निर्वाण के समय अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित कर दिये थे।^१

महावीर-निर्वाण के १२ वर्ष बाद सुधर्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और बीस वर्ष के पश्चात् सो वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन-पूर्वक राजगृह के गुणशीलचैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।^२

(१३) धौणिक राजा

मगध देश का सम्राट् था। अनाथी मुनि से प्रतिबोधित होकर भगवान् महावीर का परम भक्त हो गया था। ऐसी एक जन-श्रुति है।

१. (क) जीवते चैव भट्टारए शबहि जणेहि अञ्ज सुधम्मस्त गणो निविद्यत्तो दीहाउमोत्ति णातुं।

—कल्पसूत्र चूणि २०१-

(ख) परिनिव्वया गणहरा जीवते नायए नव जणा उ, इदसुई सुद्धम्मो अ, रावणित्ते निव्वए वोरे।

—भावश्यक नियुक्ति गा. ६५८-

२. भावश्यक नियुक्ति, ६५५.

(२) गुणशील

राजगृह के बाहर गुणशील नामक एक प्रसिद्ध बगीचा था। भगवान महावीर के शताधिक बार यहाँ समयसरण लगे थे। शताधिक व्यक्तियों ने यहाँ पर धमणधर्म व चारित्रधर्म ग्रहण किया था। भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधरो ने यहीं पर अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया था। वर्तमान का गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, वही महावीर के समय का गुणशील है।

(३) चम्पा

चम्पा अज देश की राजधानी थी। कनिष्क ने लिखा है—भागलपुर से ठीक २४ मील पर पत्थरघाट है। यही इसके आस-पास चम्पा की उपस्थिति होनी चाहिए। इसके पास ही पश्चिम की ओर एक बड़ा गाव है, जिसे चम्पानगर कहते हैं और एक छोटा-सा गाव है, जिसे चम्पापुर कहते हैं। संभव है, ये दोनों प्राचीन राजधानी चम्पा की सही स्थिति के द्योतक हों।^१

फाहियान ने चम्पा को पाटिलपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित माना है।^२

महाभारत की दृष्टि से चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' था। महाराजा चम्प ने उसका नाम चम्पा रखा।^३

स्थानाग^४ में जिन दस राजधानियों का उल्लेख हुआ है और दीघनिकाय में जिन छह महानगरियों का वर्णन किया गया है, उनमें एक चम्पा भी है। श्रोतपातिक सूत्र में इसका विस्तार में निरूपण है।^५ दशवंकानिक सूत्र की रचना आचार्य शम्भुभव ने यही पर की थी।^६

मगधात् श्रेणिक के निधन के पश्चात् कृष्णक (अजातशत्रु) को राजगृह में रहना अच्छा न लगा और एक स्थान पर चम्पा के मुन्दर उद्यान को देखकर चम्पानगर बनाया।^७ गणि कल्याण-विजयजी के अभिमतानुसार चम्पा पटना से पूर्व (कुछ दक्षिण में) लगभग सौ कोस पर थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते हैं। यह स्थान भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम में है।^८

चम्पा के उत्तर-पूर्व में पूर्णभद्र नाम का रमणीय चैत्य था, जहाँ पर भगवान महावीर टहरते थे।

१. दो एण्णियण्ट ज्योषापी भांक इण्णिया, पृ. १४६-१४७

२. इंडोस भांक फाहियान, पृ. ६५.

३. महाभारत १२/५/१३८

४. स्थानाग १०/७१७

५. श्रोतपातिक, चम्पा वर्णन

६. जैन धार्मिक साहित्य में भारतीय समाज, पृ. ८६६

७. विशिष्ट तीर्थस्तर, पृ. ६५

८. धर्मण भगवान महावीर, पृ. ३६९

बीज दृष्टि में चार महाद्वीप हैं उन चारों के केंद्र में गुप्तक है। गुप्तक के पूर्व में पुरा विदेश पश्चिम में धारमगोत्रान धर्मरा धारमगोत्राने उत्तर में उत्तर कुन्ध धोर रीशाय में उत्तरीय है।^१

बीज परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप दस हजार योजन बड़ा है।^२ दस हजार योजन की भू-भरा होने के कारण समुद्र बड़ा जरा है धोर तीन हजार योजन में माना है।^३ धर तीन हजार योजन में चोगमी हजार कृता (नारिगा) में युवाभित सभी धार बड़ा है २०० नरिगा में ऊंचा हिमवान पर्वत है।^४

उल्लिखित वर्णन में स्पष्ट है कि जिन ४ में भारत के नाम में जाना है वही बीज में जम्बूद्वीप के नाम में लिखान है।^५

(५) द्वारका (द्वारवती) :—

भारत की प्राचीन प्रसिद्ध नगरिया में द्वारका का अनात विभिन्न स्थान रहा है। भग्न धोर वैदिक दोनों ही मरुत्वियों के वाङ्मय में द्वारका को विस्तार में बताया है।

(१) ज्ञानाधर्मकथा व धनगदस्माधो के अनुसार द्वारका गोमट्ट में थी।^६ वह पूर्व-पश्चिम में चारह योजन लम्बी, धोर उत्तर-दक्षिण में नव योजन विस्तीर्ण थी। यह मध्य दुर्धर द्वारा निर्मित गोत्रे के प्राकार वाली थी, जिन पर पांच वर्णों के नाना मणियों में मुद्रित-रूप हविर्गोपक-रूपों थे। वह बड़ी सुरम्भ, अलकापुरी-नुन्ध धोर प्रत्यक्ष देवलोह-मदुन थी। वह प्रामादिक, दर्शनीय अभिरूप तथा प्रतिरूप थी। उसके उत्तर-पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था। उसके पास ममस्त ऋतुधो में फल-फूली में लदा रहनेवाला नन्दनवन नामक सुरम्भ उद्यान था। उम उद्यान में मुरप्रिय यक्षाद्यतन था। उम द्वारका में श्रीकृष्ण वामुदेव अपने मन्मूणों राजपरिवार के साथ रहते थे।^७

१. डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स, पण्ड २, पृ २३६

२. वही, पण्ड १, पृ. ११७

३. वही, पण्ड १, पृ ३५५

४. वही पण्ड १ पृ. ९४१

५. वही, पण्ड १, पृ ९६१

६. वही, पण्ड २, पृ. १३२५-१३२६

७. (क) इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स ऑफ बुद्धिज्म ऐंड जैनिज्म पृ १, विमलचरण लॉ विथित.

(ख) जातक प्रथम पण्ड, पृ २८२, ईशानचन्द्र पौष

(ग) भारतीय इतिहास की रूपरेखा भा १, पृ. ४, वैद्यक-जयचन्द्र विद्यालकार

(घ) पाली इगलिया डिक्शनरी पृ. ११२, टी. डब्ल्यू रोस डेविम तथा विलियम स्टेड

(ङ) मुत्तनिपात की भूमिका-धर्मरसित पृ. १

(च) जातक-मानचित्र—भदन्त घानन्द कौशलयावन

८. (क) ज्ञानाधर्म कथा १।१६, सूत्र ११३

(ख) धनगदस्माधो

९. ज्ञानाधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

योजन धरती लेकर द्वारका का निर्माण किया बताया है ।

महाभारत में श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के बारे में युधिष्ठिर से कहा—मथुरा को छोड़कर कुणस्थली नामक नगरी में आये जो रवतक पर्वत से उपशोभित थी । वहाँ दुर्गम दुर्ग का निर्माण किया, अधिक द्वारों वाली होने के कारण द्वारवती अथवा द्वारका कहलाई ।^१

महाभारत जन-पर्व में नीलकण्ठ ने कुशावतं का अर्थ द्वारका किया है ।^२

‘अज का सांस्कृतिक इतिहास’ में प्रोफेसर मित्रल ने लिखा है^३ शूरसेन जनपद में यादवों के आ जाने के कारण द्वारका के उम छोटे में राज्य की बड़ी उन्नति हुई थी । वहाँ पर दुर्भेद्य दुर्ग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और उसे अधक-वृष्णि सभ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप में मण्डित किया गया । भारत के समुद्र-तट का वह सुदृढ़ राज्य विदेशी अनायों के आक्रमण के लिए देश का एक सजग प्रहरी भी बन गया था । गुजराती भाषा में ‘द्वार’ का अर्थ बंदरगाह है । इस प्रकार द्वारका या द्वारवती का अर्थ हुआ ‘बंदरगाहों की नगरी ।’ उन बंदरगाहों में यादवों ने मुद्गर-समुद्र की यात्रा कर विपुल सम्पत्ति अर्जित की थी । द्वारका में निर्धन, भाग्यहीन, निर्बल तन और भलिन मन का कोई भी व्यक्ति नहीं था ।^४

(१) रायम डेविड्स ने कम्बोज को द्वारका की राजधानी लिखा है ।^५

(२) पंतवन्धु ने द्वारका को कम्बोज का एक नगर माना है ।^६ डाक्टर मलशेखर ने प्रस्तुत कथन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—यह कम्बोज ही ‘कसभोज’ ही, जो कि अधकवृष्णि के दम पुत्रों का देश था ।^७

(३) डा मोनीचन्द्र कम्बोज को पामीर प्रदेश मानते हैं और द्वारका को बंदरवशा से उत्तर में अवस्थित ‘दरवाज’ नामक नगर कहते हैं ।^८

१. कुणस्थलीं पुरी रम्या रवनेनोपशोभिताम् ।
ततो निवेश तस्या च कृतवन्तो यय नृप । ॥५०॥
नर्बेद्य दुर्ग-मस्तरार देवैरति दुरामदम् ।
स्थितोऽपि यस्या युधेसु त्रिमु वृष्णि महारथा ॥५१॥
.....मथुरा मगधिवज्य गता द्वारवतीपुरीम् ॥६७॥

—महाभारतमहापर्व, अ १८

२. (क) महाभारत जन पर्व, अ १६० श्लोक ५०

(ख) धर्मोत्तम का धनावरण, पृ १६३

३. द्वितीय खण्ड अज रा इतिहास, पृ ८७

४. हरिवंशपुराण २।५८।६५.

५. Buddhist India, P. 28

Kamboja was the adjoining country in the extreme North-West, with Dvaraka as its Capital.

६. पंतवन्धु भाग २, पृ ९

७. दि इतिहास की पाठ पाठी प्रथम भाग, भाग १, पृ ११२६

८. ज्योतिषिण एण्ड इकोनामिक स्टडीज इन दी महाभारत, पृष्ठ ३२-६०

(६) भरतक्षेत्र —

जम्बूद्वीप का दक्षिणी धोर का भूराण्ड भरतक्षेत्र के नाम से विभक्त है । गन्धर्वायननाम्नार है । जम्बूद्वीप प्रक्षालित के शत्रुघ्नार इनके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में न्यवण समुद्र है ।^१ उत्तर दिशा में चूलहिमव त पर्वत है ।^२ उत्तर में दक्षिण तक भरतक्षेत्र की लम्बाई ५२६ योजन ६ कला है और पूर्व में पश्चिम की लम्बाई १४८७१ योजन और कुछ कम ६ कला है ।^३ दमरा क्षेत्रकन ५३,८०,६८२ योजन, १७ कला और १७ विकला है ।^४

अनक्षेत्र की सीमा में उत्तर में चूलहिमवत नामक पर्वतलेख पूर्व में गंगा और पश्चिम में सिन्धु नामक नदियां बहती हैं । भरतक्षेत्र के मध्य भाग में ५० योजन विस्तारवाला वर्तमान पर्वत है ।^१ जिसके पूर्व और पश्चिम में त्वणसमुद्र है । इस वर्तमान में भरतक्षेत्र दो भागों में विभक्त हो गया है जिन्हें उत्तर भरत और दक्षिण भरत कहते हैं । जो गंगा और सिन्धु नदियां चूलहिमव त पर्वत से निकलती हैं वे वर्तमान पर्वत में से होकर त्वणसमुद्र में गिरती हैं । इस प्रकार इन नदियों के कारण, उत्तर भरत खण्ड तीन भागों में और दक्षिण भरत खण्ड भी तीन भागों में विभक्त होता है ।^२

इन छह खण्डों में उत्तरार्द्ध के तीन खण्ड अनायं कहे जाते हैं । दक्षिण के अनायन-वणत के खण्डों में भी अनायं रहते हैं । जो मध्यखण्ड है उसमें २५॥ देश आयं मानं गये हैं ।^३ उत्तरार्द्ध भरत उत्तर से दक्षिण तक २३८ योजन ३ कला है और दक्षिणार्द्ध भरत भी २३८ योजन ३ कला है ।

जिनसेन के शत्रुघ्नार भरत क्षेत्र में मुकोदान, श्रवन्ती, पूण्ड्र, शरभक, कुरु, काशी, कौसल, अग, वंग, मुह्य, समुद्रक, कारभीर, जनीनर, आनतं, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुशनागत कच्छट, महाराष्ट्र, गुराष्ट्र, आभीर, कोकण, बनवास, आग्नि, कण्टिक, कौसल, चोल, केरल दाम, श्रामसार, सोबोर, भूसेन, अग्ररत्नक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चंद्रि, पल्लव, काम्बोज, शारट्ट, बाल्हिक, तुल्क, जक और केकय प्रादि देशों की रचना मानी गई है ।^४

बौद्ध साहित्य में अग, मगध, काशी, कौसल, वज्ज, मल्ल, चैति, वत्स, कुरु, पंचाल भरत, भूरसेन, शरभक, श्रवन्ती, गंधार और काम्बोज इन सोलह जनपदों के नाम मिलते हैं ।^५

१. जम्बूद्वीप प्रक्षाल, सटीक, बधमकार १, सूत्र १०, पृ ६५।२

२. बहो. १।१०।६५-२

३. लोचननाग, सर्ग १६, श्लोक ३०-३१

४. लोचननाग, सर्ग १६, श्लोक ३३-३४

५. बहो. १६।४८

६. बहो. १६।३४

७. बहो. १६।३६

८. (क) बहो. १६, श्लोक ४४

(ख) बृहत्सत्त्वभाष्य १, ३२१३ युक्ति, तथा १, ३२७४-३२८६.

९. प्राविपुराण १६।१४२-१४४

१०. अमृतसरिमाग, पालिपेटसं संक्षेपटी संस्करण : विंल १, पृ. २।३, विंल ४, पृ २४२

देवतक पर्वत पर जा रही थी। बीच में बहुत वर्षा से भीग गई और कण्डे सुगाने के लिए वहाँ एक गुफा में ठहरी,^१ जिसकी पहचान आज भी राजीमती गुफा से की जाती है।^२ देवतक पर्वत सीराण्ड में आज भी विद्यमान है। समभव है प्राचीन द्वाराका इसी की तलहटी में यसी हो।

देवतक पर्वत का नाम ऊज्यन्त भी है।^३ रुद्रदास और स्कंधगुप्त के गिरनार शिलालेखों में इसका उल्लेख है। वहाँ पर एक नन्दनवन था, जिसमें मुरप्रिय यक्ष का यथाप्यतन था। यह पर्वत शनैक पक्षियों एवं लताओं से सुशोभित था। वहाँ पर पानी के भरने भी वहाँ करते थे^४ और प्रतिवर्ष हजारों लोग संशोड (ओज, जीमनवार) करने के लिए एकत्रित होते थे। यहाँ भगवान् धरिन्दनेमि ने निर्वाण प्राप्त किया था।^५

दिगम्बर परम्परा के अनुसार देवतक पर्वत की बन्धुगुफा में श्राव्यायं धरतन ने तप किया था, और यही पर भूतबलि और गुण्यन्त श्राव्यायं ने श्रावशिष्ट श्रुतज्ञान की लिपिबद्ध करने का श्रादेश दिया था।^६

महाभारत में पाण्डवों और यादवों का देवतक पर युद्ध होने का वर्णन आया है।^७

जैन ग्रंथों में देवतक, उज्जयल, उज्जवल, गिरिपाल और गिरनार प्रादि नाम इस पर्वत के आये हैं। महाभारत में भी इस पर्वत का दूसरा नाम उज्जयवत आया है।^८

(१२) विपुल-गिरि पर्वत :—

राजगृह नगर के समीप का एक पर्वत। श्रापणों में शनैक स्थलों पर इसका उल्लेख मिलता है। स्वयंभो की देव-रेख में धोर लपटवी यहाँ शक्रर सेलेचना करते थे।

जैन ग्रंथों में इन पाच पर्वतों का उल्लेख मिलता है—

१. वैभारगिरि

२. विपुल गिरि

१. गिरि देवय जन्ती, बाहेकुलता उ कान्तरा।

शाम-१ कालभारति काली लघुगुण भा दिया ॥

२. विषय तीर्थल, ३११६

३. जैन कालम काटिल में भारतीय समाज, पृ ४३२

४. बृहत्सत्त्वभाष्यशुनि, ११२१२२

५. (क) कालभारति, १११७६, पृ. १६२

(घ) शाण्डिल्य, ५, पृ ६८

(च) कालभारति, ५, पृ. २८

(ङ) जलसम्पन्न तीर्थ, २२, पृ २८०

६. जैन कालम काटिल में भारतीय समाज पृ ६३२.

७. कालभारति में भारत, पृ. १०१.

८. म. महाभारत नी पर्वतकांड, पृ. २१६, २. वैभारगिरि

में ।^१ यह स्थान उत्तर-पूर्वीय रेलवे के बनगामपुर स्टेशन से जो तड़क जाती है, उगमें दग मोल दूर है । बहराईच से वह २६ मील पर अवस्थित है ।

विद्वान वी० स्मिथ के अभिमनानुमार थावस्ती नेपाल देग के गजुरा प्रान्त में है और वह बालपुर की उत्तर दिशा में तथा नेपालगंज के सन्निकट उत्तर पूर्वीय दिशा में है ।^२ युषान नुम्राङ्ग ने थावस्ती को जनपद माना है और उगका विस्तार छह हजार ली, उगकी राजधानी को 'प्रामादनगर' कहा है, जिसका विस्तार बीस ली माना है ।^३

जैन दृष्टि से यह नगरी अचिरावनी (राप्ती) नदी के किनारे बसी थी । जिसमें बहुत कम पानी रहता था, जिसे पार कर जैन श्रमण भिक्षा के लिए जाते थे ।^४ कभी-कभी उसमें बहुत तेज बाढ़ भी आ जाती थी ।^५ थावस्ती बौद्ध और जैन सस्कृति का केन्द्रस्थान रहा है । केशी और गौतम का ऐतिहासिक सवाद वही हुआ ।^६ अनेक ऐतिहासिक प्रमंग उम भूमि से जुड़े हुए हैं ।^७ भगवान् महावीर ने छत्रथावस्था में दसवां चानुर्मास वहा पर किया था । फेवलज्ञान होने पर भी वे अनेक बार वहाँ पर पधारे थे और संकडों व्यक्तियों को प्रव्रज्या प्रदान की थी और हजारों को उपासक बनाया था । थावस्ती के कोष्ठकोद्यान में गोशलक ने तेजोलेख्या से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियों की मारा था और भगवान् महावीर पर भी तेजोलेख्या प्रक्षिप्त की थी । गोशलक का परम उपासक अयंपुल व हालाहला कु भारिन यही के रहने वाले थे ।

-
१. दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृ. ४६९-४७४
 २. जर्नेल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १, जन. १९००
 ३. युषान नुम्राङ्गम् ट्रेवेल्स इन इंडिया, भाग १ पृ. ३७७
 ४. (क) कल्पसूत्र
(ख) बृहत्कल्प सूत्र, ४।३३.
(ग) बृहत्कल्प भाष्य, ४।५६३९, ५६५३.
 ५. (क) भावशयक सूत्रिण, पृ. ६०१
(ख) भावशयक हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. ४६५.
(ग) भावशयक मलयगिरि वृत्ति, पृ. ५९७
(घ) टीती ना कथानोय, पृ. ६.
 ६. उत्तराध्ययन
 ७. देविए-प्रस्तुत पंथ.

२२. श्री मोहनराजजी वाडिया, अहमदाबाद
 २३. श्री चेतनमलजी सुराणा, मद्रास
 २४. श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, नागौर
 २५. श्री वादलचदजी मेहता, इन्दौर
 २६. श्री हरकचदजी सागरचदजी वेताला, इन्दौर
 २७. श्री सुगनचन्दजी बोकाडिया, इन्दौर
 २८. श्री इन्दरचदजी बंद, राजनादगाव
 २९. श्री मागीलालजी धर्मीचदजी चोरडिया, चांगा-
 टोला
 ३०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चांगा-
 टोला

३१. श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा मद्रास
 ३२. श्री सिद्धकरणजी बंद, चागाटोला
 ३३. श्री जालमचदजी रिखबचदजी वाफना, आगरा
 ३४. श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
 ३५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
 ३६. श्री धेवरचदजी पुखराज जी, गोहटो
 ३७. श्री मागीलालजी चोरडिया, आगरा
 ३८. श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
 ३९. श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
 ४०. श्री अमरचदजी बोधरा, मद्रास
 ४१. श्री छंगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
 ४२. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया,
 बंगलौर
 ४३. श्री जड़ावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
 ४४. श्री पुखराजजी विजयराज जी, मद्रास
 ४५. श्री जवरचंदजी गेलडा, मद्रास
 ४६. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कुप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
 २. श्री अमरचदजी बालचदजी मोदी, व्यावर
 ३. श्री चम्पालालजी मोठालालजी सकलेचा,
 जालना
 ४. श्री छगनीबाई विनायकिया, व्यावर
 ५. श्री भवरलालजी चौपडा, व्यावर

६. श्री रतनलालजी चतर, व्यावर
 ७. श्री जवरीलालजी अमरचंदजी कोठारी, व्यावर
 ८. श्री मोहनलालजी गुलाबचंदजी चतर, व्यावर
 ९. श्री वादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
 १०. श्री के. पुखराजजी वाफना, मद्रास
 ११. श्री पुखराजजी बुधराजजी बोहरा, पीपलिया
 १२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी वाफना, व्यावर
 १३. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डाबल
 १४. श्री मागीलालजी प्रकाशचदजी रूपवाल, बर
 १५. श्री मोहनलालजी मंगलचदजी पगारिया, रामपुर
 १६. श्री भवरलालजी गौतमचदजी पगारिया,
 कुशालपुरा
 १७. श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशाल-
 पुरा
 १८. श्री फूलचदजी गौतमचदजी काठेड, पाली
 १९. श्री रूपचदजी जोधराजजी मूया, पाली
 २०. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
 २१. श्री देवकरणजी श्रीचदजी डोसी, मेड़तासिटी
 २२. श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेड़तासिटी
 २३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़ता
 सिटी
 २४. श्री वी गजराजजी बांकडिया, सलेम
 २५. श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया,
 बिल्लीपुरम्
 २६. श्री कनकराज जी मदनराजजी गोलिया,
 जोधपुर
 २७. श्री हत्कराजजी मेहता, जोधपुर
 २८. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
 २९. श्री धेवरचदजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
 ३०. श्री गणेशमलजी नेमीचदजी टाटिया, जोधपुर
 ३१. श्री चम्पालालजी हीरालालजी वागरेचा,
 जोधपुर
 ३२. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
 ३३. श्री जमराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
 ३४. श्री मूलचदजी पारस, जोधपुर
 ३५. श्री अमृत एण्ड क., जोधपुर

६६. श्री वर्द्धमान स्थानकवामी जैन, श्रावकसप्त,
दिल्ली-राजहरा
- १०० श्री जवरीनाथजी यातिनाथजी मुराणा,
बुनारम
१०१. श्री फतेराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
१०२. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
१०३. श्री जुगराजजी वरमेचा, मद्रास
- १०४ श्री कुमालचदजी रिखवचदजी मुराणा,
बुनारम
१०५. श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोन, नागौर
१०६. श्री मम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
- १०७ श्री कुन्दनमलजी पाममलजी भण्डारी,
बंगलोर
१०८. श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रमार केन्द्र, चन्द्रपुर
१०९. श्री नेजराज जी कोठारी, मामलियावाम
११०. श्री अमरचदजी चम्पालालजी छाजेड, पाट
वडी
१११. श्री मांगीलालजी यातिलालजी रुणवाल,
हरमोलाव
११२. श्री कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी
पारसमलजी ललवाणी, गोठन
११३. श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्री
कुचेरा
- ११४ श्री भवरलालजी मांगीलालजी वेताल
११५. श्री कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
११६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी
- ११७ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अज
मेर
११८. श्री मांगीलालजी उत्तमचदजी वाफना
११९. श्री इन्दरचदजी जुगराजजी वाफना,
१२०. श्री चम्पालालजी माणकचदजी सिंघो
१२१. श्री सचालालजी वाफना, औरंगाबाद
१२२. श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी बोकाडिया,
सिटी
१२३. श्री पुखराजजी किशनराजजी तातेड,
सिकन्दराबाद
१२४. श्रीमती रामकुंवर धर्मपत्नी श्रीचान
लीडा, बम्बई
१२५. श्री भोकमचन्दजी माणकचन्दजी या
(कुडालोर), मद्रास

गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा में स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्घात—विना बादल के आकाश में ध्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—युक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, को सन्ध्या चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा में विजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश में जब तक यक्षाकार दीपता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८ धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमाम होता है। इनमें भृश वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहनाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९ मिहिका श्वेत—शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१० रज उद्घात—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फंसी रहती है। स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

घोषारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर—पचेद्रिय तिर्यंच की हड्डी मांस और रुधिर यदि मामने दिमाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार घाम घाम के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः मात एव प्राठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—दमगानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जपन्य घ्राठ, मध्यम बारह, और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः घ्राठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

